

हिन्दी साहित्य परिषद् की स्मारिका
संस्राति

हिन्दी साहित्य परिषद्, वोकारो थर्मल के अध्यक्षों का कार्य-काल

श्री कैलाश बिहारी सिन्हा—परिचालन अधीक्षक १-४-७४ से २१-१२-७८

,, जगन्नाथ प्रसाद—कार्यपालक अभियंता २२-१२-७८ से १३-१२-८०

,, कुन्दन प्रसाद—कनीय कार्यपालक अभियंता २०-१२-८० से ३-४-८१

,, मो० तलहा—प्रशासनिक अधिकारी १०-४-८१ से १३-५-८२

,, जगन्नाथ प्रसाद यादव—वरीय मंडल अभियंता १४-५-८२ से ३-१२-८३

,, अमरेश्वर प्रसाद—कार्यपालक अभियंता ४-१२-८३ से २-९-८५

,, भुवनेश्वर प्रपाद सिंह—अधीक्षण अभियंता ३-९-८५ से ५-५-८८

,, अमरनाथ मिश्र—कार्यपालक अभियंता ६-५-८८ से अब तक

परिषद् की वर्तमान कार्यकारिणी

अध्यक्ष — श्री अमरनाथ मिश्र

उपाध्यक्ष — १. श्रीमती कुसुम देवी सिंह

— २. श्री ए. के. सिन्हा

महामंत्री — श्री रामनारायण प्रसाद

मंत्रीमंत्री — श्री के. के. सिंह

महायक मंत्री — श्री मदनमोहन मुरारी सिंह

कोपाध्यक्ष — श्री अरविन्द त्रिपाठी

आशा कंस्ट्रक्शन

सिविल कंट्रैक्टर ट्रासपोर्टर

ही. वी. सी., वोकारो थर्मल

अनियतकालिक प्रकाशन
संसूति

संपादक

डॉ० रामरक्षा मिश्र विमल

मुख्य संरक्षक

मेजर जेनरल श्री शरद गुप्ता
श्री विनोद कुमार (भा. प्र. से.)

संरक्षक

श्री ब्रजकिशोर प्रसाद सिंह

परामर्शदाता

श्री अमरनाथ मिश्र, श्रीमती कुसुम
देवी सिंह, श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह,
श्री विजय कुमार वर्मा, श्री अरविन्द
त्रिपाठी, श्री दशरथ ठाकुर, श्री
कन्हैया कुमार सिंह, श्री राजकुमार
यादव, श्री मलय वर्मा, श्री सी. के.
दास, श्री ब्रह्मदेव प्रसाद मंडल,
श्री ब्रह्मदेव प्रसाद साहु, श्री श्रीकृष्ण
कुमार सिंह, श्री वी. के. बनर्जी,
श्री शेर मोहम्मद खान, श्री
रामप्रबेश सिंह, श्री बी.एन. सिंह

आवरण : श्री बैजनाथ वर्मा

संपादन-प्रकाशन/

अवैतनिक-अव्यावसायिक

रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों
के निजी हैं, उनसे संपादक की
सहमति आवश्यक नहीं। रचना की
मौलिकता आदि के लिए रचनाकार
स्वयं जिम्मेदार है। — संपादक

सितंबर, १९९३

प्रकाशक

श्री रामनारायण प्रसाद
महामंत्री, हिन्दी साहित्य परिषद्,
वाणी भवन, वोकारो थर्मल,
जि०—वोकारो (विहार)
पिन—८२९१०७

अनुक्रम

४—शुभकामना-संदेश

५—संपादकीय

लेख/परिचर्चा

९—हिन्दी साहित्य परिषद्...

११—श्री रामनारायण प्रसाद...

१३—पुर्लिंग या पुर्लिंग ?

१५—बिहार के अवसर पर...

२५—राहें, हम चलते हैं...

२७—दामोदर घाटी निगम...

२९—क्या हनुमान पूँछवाले...

३३—अनिवार्य है भारतीय बोध...

३५—पर्यावरण-प्रदूषण

३८—चर्चा शांति की

४२—फलित ज्योतिष...

४६—जनगायक भरत शर्मा...

४८—ड्रग डिजीज से बचें

५०—प्राचीन भारत के वैज्ञानिक

कविता/गीत/गोजल

१२, २०, ३१, ३२, ३४, ४५, ४९
चंद्रशेखर त्रिपाठी, डॉ. रामप्यारे
तिवारी, रामेश्वर सिन्हा पीयूष,
सिद्धेश्वर सिंह मधुकर, अविनाश
कुमार सिंह, राकेश कुमार,
डॉ. आसिफ रोहतासवी, विजय
प्रकाश, रामबली सिंह, गुलाब अंसारी

कहानी/लघुकथा

२१. प्रेमचंद

२८, ३१, ३२ अंकुश्री, सत्येन्द्र

दीक्षित, रामेन्द्र मिश्र

शुभकामना संदेश

मुझे अति प्रसन्नता है कि दामोदर घाटी निगम, बोकारो थर्मल परियोजना स्थित साहित्य परिषद् अपनी "स्मारिका" प्रकाशित कर रहो है।

कामना है, हिन्दी को समर्पित परिषद् की यह स्मारिका पृष्ठ-दर-पृष्ठ निगम तथा निगम के बाहर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार का निमित्त बने एवं इसमें प्रकाशित समग्री सुग्राह्य एवं संग्रहणीय हो तथा आम आदमी में हिन्दी के प्रति रुक्षान पैदा करे। हार्दिक शुभकामनाओं सहित

विनोद कुमार

भा. प्र. से.

महाप्रबन्धक

दामोदर घाटी निगम,
भवानी भवन, अलीपुर,
कलकत्ता—७०००२७

हिन्दी साहित्य परिषद्, बोकारो थर्मल द्वारा स्मारिका के प्रकाशन का विचार हर्षदायक लगा। परिषद् का यह प्रयास उचित एवं सराहनीय है।

हमें विश्वास है कि परिषद् के इस प्रकाशन से दामोदर घाटी निगम के अंदर और बाहर हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार को पर्याप्त बल मिलेगा।

स्मारिका प्रकाशन हेतु मेरो बधाई और परिषद् के स्वर्णिम भविष्य हेतु मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

ब्रजकिशोर प्र. सिंह

मुख्य अभियन्ता

डीवीसी, बोकारो ताप विद्युत केन्द्र,
बोकारो थर्मल ८२९१०७
जिं बोकारो (विहार)

संपादकीय

समकालीन साहित्य की राजनीतिक प्रासंगिकता

आज के संदर्भ में जबकि 'राजनीति' हर बुद्धिजीवी के लिए ग्राह्य, संवेद्य और भोग्य बन चुकी है साहित्य की राजनीतिक प्रासंगिकता की चर्चा बहुत हद तक जायज लगती है। किंतु, आजादी से पूर्व यह शब्द अपने गिर्द कार्य से परिणाम तक के अंतराल में भय और दहशत के पर्याप्त पाथेय समेटकर चलता था। शिक्षा के सामान्यीकरण, बुद्धिजीवियों की बढ़ती संख्या और सबसे बड़ी चीज—समय के परिवर्तन-प्रवाह ने आज इस शब्द को सचमुच केन्द्र में रख छोड़ा है। और, सच पूछिए तो आज यह शब्द दैनंदिन प्रयोग में स्वाभाविक रूप से आने लगा है। अब तो लगता है जैसे हमारे अस्तित्व से भी यह एक हद तक जुड़ने लगा है।

ऐसे में, साहित्य राजनीति से अछूता कैसे रह सकता है?—यह प्रश्न एक सहज स्वर बन जाता है। लेकिन, इस प्रश्न का यह अर्थ कत्तई नहीं लेना होगा कि मैं यह मानकर चलता हूँ कि साहित्य का राजनीतिक संदर्भ में प्रासंगिक होना ही उसका खरा होना है।

यह एक प्रतिष्ठित सच है कि साहित्य समकालीन समाज का आईना होता है, लेकिन इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि उस दौर की तमाम कृतियों को उसी निकष पर देखा जाय। कल तक ऐसा था एक हद तक। तुलसीदास इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं। उन्होंने अपनी कृतियों में समकालीन समाज के यथार्थ को जिस रूप में चित्रित किया, अभी तक वैसा प्रयत्न किसी के साहित्य में दृष्टिगत नहीं होता। स्वातंत्र्य-आंदोलन का साहित्य तो पूरी तरह तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का व्यान करता है, क्योंकि उस समय साहित्यकारों के अस्तित्व में 'देश' पूरी तरह समा गया था, उनका पृथक् अस्तित्व नहीं रह गया था। लेकिन, आज वह स्थिति नहीं है। कई सरकारी या अर्द्धसरकारी संस्थाओं में सेवारत अवल दर्जे के साहित्यकार तो हैं, मगर राजनीतिक संदर्भ में उनकी रचनाओं का अवलोकन नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि उनके साथ अधिकतर ऐसी स्थितियाँ आती हैं, जब वे अपनी अनुभूतियों को सहज रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाते।

उनकी बाध्यता होती है कि वे राजनीतिक लेखन नहीं कर सकते (राजनीतिक लेखन में जो क्षेत्र उन्हें मिलता है, वह उनकी अनुभूतियों का नहीं, लादी गयी मान्यताओं का होता है।) और तब आपही बताइए, कहाँ से देख पाएंगा उनकी कृतियों में राजनीतिक आवेग? और ऐसे में क्या उन्हें छोड़कर चलते बनिएंगा? कुछ चर्चित साहित्यकारों से ही तो साहित्य नहीं है—छोटे-बड़े तमाम साहित्यकारों की रचनाओं का मतलब साहित्य होता है। जाहिर है इस अर्थ में साहित्य की राजनीतिक प्रासंगिकता कमजोर दृष्टिगत होती है। एक दूसरा भी संदर्भ है और वह यह कि रचनाकार की हर रचना में राजनीतिक प्रभाव या उसकी कलावाजियों के दर्शन नहीं किये जा सकते।

आज अधिकांश रचनाकार यह मानने लगे हैं कि समकालीन साहित्य अपने समय से उग्र मुलाकात का साहित्य है। समकालीन साहित्य चूँकि समकालीन जीवन को ही अपना विषय बनाता है, अतः सामाजिक और आर्थिक के साथ-साथ राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का भी साहित्य के लिए अनिवार्य हो जाना स्वाभाविक है। इस संदर्भ में तुलसीदास जैसा सचेत कवि मुझे नहीं भिलता। उनकी कृतियों के अध्ययन के बाद ऐसा लगता है कि 'ते जानहु निसिचर सम प्रानी' लिखते समय उनके समकालीन प्रशासन की विकृतियाँ उनके सामने थीं। अकबर के शासनकाल में प्रत्येक सामंत के मरते ही उसकी भूमि राजा की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ हो जाते थे। इतना ही नहीं उन दिनों कृषकों की प्रधान आवश्यकताओं की उपेक्षा कर लगान वसूल करनेवाले छोटे-छोटे कर्मचारी भी लुटेरों की भाँति इन दीनों को नोचते-खसोटते थे। भीषण परधन-अपहरण के साथ ही परदारा-अपहरण भी मुगल शासन में खूब हुआ। इस संबंध में डॉ. स्टेनली लेनपूल से हमें सूचना मिलती है कि अकबर के हरम में पाँच हजार सुन्दरियाँ थीं। डॉ. बेनीप्रसाद बताते हैं कि जहाँगीर के अंतःपुर में भी तीन सौ सुन्दरियाँ एकत्र कर ली गयी थीं। जहाँगीर के पितृविरोध को भी इन तथ्यों के साथ जोड़ दें तो रामचरितमानस की इन अद्वालियों का भाव सहज ही स्पष्ट हो जाता है—

वाढ़े बहुखल चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा।

मानहि मातु पिता नहिं देवा। साधुन सन करवावहिं सेवा।

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सम प्रानी॥

रामचरितमानस के अतिरिक्त अपनी अन्य कृतियों में भी तुलसीदास ने राज्य की इस नीति के प्रति आक्रोश प्रकट किया है—

भूमि चोर भूप भये ।

गोड़ गेवार चृपाल महियमन महा महिपाल ।

साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥

वर्तमान संदर्भ में कहना नहीं होगा कि आठवें दशक से समकालीन, काव्य-धारा पर राजनीति पूरी तरह काविज होती गयी है। यद्यपि, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में भी राजनीति की गहरी समझ परिलक्षित होती है, तथापि धूमिल की कविताओं में पहली बार राजनीति की गहराई इतनी स्पष्ट और संपूर्णता में दिखती है। धूमिल की 'संसद से सङ्क तक' ने तो संसदीय राजनीति के चरित्र को ही जैसे नंगा कर दिया। तब से अब तक 'राजनीति' समकालीन कविता की मुख्य अंतर्वस्तु के रूप में दिखाई पड़ने लगी है, चाहे वह कविता प्रतिबद्ध कवि की हो या तटस्थ कवि की।

अस्तु, आज 'राजनीति' शब्द ने साहित्य-सृजन के संदर्भ में पूरा विस्तार पा लिया है। वह आज की कविता के लिए अलंकरण या उद्दीपन की सामग्री नहीं है, बल्कि वह अलंकार्य है, आज की कविता का आलंबन है। ऐसे में साहित्य और राजनीति को पृथक् करके नहीं देखा जा सकता।

मानवीय मूल्यों की पुनरस्थापना आवश्यक

कल-युग (भावी कंप्यूटर युग) ने हमारे लिए नए-नए भौतिक साधन उपलब्ध कराने के साथ ही इन अचेतन साधनों की निष्प्राणता भी गंध के रूप में हमें भेट की है। यही कारण है कि हमने 'आत्मीयता और हृदय की विशालता' को विशिष्ट उपलब्धि के रूप में कम और पिछड़ापन के प्रतीक के रूप में अधिक लिया है। शायद इसीलिए उन सभी पुण्यात्माओं के, जिन्होंने स्वयं को समाज-सुधार के लिए उत्सर्ग कर दिया—छायाचित्र की पूजा कर या उनकी प्रस्तर-प्रतिमा या समाधि पर पुष्प-मालाएँ अर्पित कर हम अपने विद्याल और संवेदनशील चितन की, और क्षमता के अनुरूप अपने संपूर्ण सामाजिक दायित्व की इतिश्री समझते जा रहे हैं।

हमारी इन प्रभावित विचारधाराओं और तदनुरूप आचार आदि का प्रभाव हमारी नई पीढ़ी (बच्चों) पर भी खूब पड़ा है और इसका जहर उन पर प्रभावी होता जा रहा है, उनके तमाम मानवीय मूल्य आज क्षतिग्रस्तता की स्थिति में हैं। हमारी युवा पीढ़ी में यह परिवर्तन दूसरे रूप में आया है। वह यदि देश-विदेश में सर्विसेज (सेवाओं) के लिए कंपटीशंस (प्रतियोगिताओं) में सम्मिलित होने हेतु जेनरल स्टडीज और कंपटीशंस मैगजिस का

अध्ययन 'इकजाम भिउ' से करने में अपने को तब्लीन कर चुकी है, तो वही असफलता की स्थिति में हीन भावना से ग्रसित होकर अपनी शक्ति का उपयोग विष्वासात्मक कार्यों में करने के चितन की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में दीपावली के ज्योति पर्व पूरे वर्ष भी मनाये जायें तो भी अंधकार के साम्राज्य पर हमारा अधिकार असंभव है, क्योंकि तिमिर-सृजन की प्रक्रिया आज पूरी गति में है।

इस स्थिति से बचने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि विस्थापित हो रहे उन तमाम मानवीय मूल्यों को फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करें, जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ते हैं, जीवमात्र के प्रति हृदय में प्रेम उत्पन्न करते हैं और जीवन को विधेयात्मक दृष्टिकोण देते हैं।

यह अंक

पत्रिका का यह अंक अपने हाथों में देखकर पता नहीं आप चौंकेंगे या दुःखी होंगे, मगर एक बात जरूर आपके होठों तक आएगी—‘संसृति’ नाम पढ़कर लगा कि यह एक विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका होगी, मगर यह तो…। क्षमाप्रार्थना के साथ कहना चाहूँगा कि यह अंक ‘साहित्यिक नहीं बन पड़ा है’—ऐसा नहीं है, बल्कि इसका जो रूप आपके सामने है, वह पूरी तरह विचार-विमर्श के बाद की एक प्रक्रिया के तहत है।

पहले तो मैं स्पष्ट कर दूँ कि यह हिन्दी साहित्य परिषद् की स्मारिका है और भविष्य में इसके प्रकाशन की योजना को देखकर कहूँ तो परिषद् के मुख्यपत्र का प्रवेशांक भी। परिषद् का यह उद्देश्य है कि यह पत्रिका अधिक से अधिक लोगों द्वारा रुचिपूर्वक पढ़ी जाय और बुद्धिजीवियों में साहित्यिक लेखन-पठन का वातावरण बुनने की एक सुगबुगाहट पैदा हो जाय; इसीलिए इस क्षेत्र में आज के साहित्य का उर्वरक अधिक परिमाण में डालते समय मेरे हाथ थम गये—कहीं रक्षा में हत्या न हो जाए।

इस अंक में कई ऐसे भी रचनाकार हैं, जिन्होंने पहली बार लेखनी उठायी हैं और बहुत खूब लिखा है। मैंने उन्हें स्थापित रचनाकारों से अलग नहीं रखा है, ताकि उनकी रचनाओं का बेहतर मूल्यांकन हो सके; रचनाकारों के पते न देने के पीछे भी मेरी यही मानसिकता रही है।

अंत में, अपने उन सभी साथियों के प्रति मैं विनयावनत हूँ, जिनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग से पत्रिका को यह मूर्त रूप मिला है और आप सभी पाठकों को यह पत्रिका समर्पित कर रहा हूँ तो इस अपेक्षापूर्ण विश्वास के साथ कि अपनी प्रतिक्रिया से आप हमें अवश्य अवगत कराएँगे। आपकी ‘आलोचना’ ‘संसृति’ के विकास में पाथेय की भूमिका में होगी। □ □ □

हिन्दी साहित्य परिषद् की विकास-यात्रा

रामनारायण प्रसाद

बोकारो ताप विद्युत केन्द्र में हिन्दी साहित्य परिषद के अलावा भी अन्य संस्थाएँ कार्यरत थीं, जो आज अतीत बन गईं। परंतु, धैर्य, लगन और ईमानदारी से संचालित हिन्दी साहित्य परिषद विगत १९ वर्षों से सतत विकास की ओर अग्रसर है।

हिन्दी साहित्य परिषद का मुख्य उद्देश्य है—“भारतीय संविधान में पूर्ण आस्था रखते हुए असांप्रदायिक एवं गैर राजनीतिक रूप से हिन्दी भाषा का प्रचार एवं प्रसार करना, औद्योगिक क्षेत्र एवं उसके निकटवर्ती ग्रामों में हिन्दी भाषा के द्वारा निरक्षरता की जगह साक्षरता लाना।”

सर्वप्रथम इस संस्था का जन्म सात व्यक्तियों की कल्पना स्वरूप हुआ—सर्वश्री रामनारायण प्रसाद, विनोद कान्त ठाकुर, रामप्रवेश सिंह, लक्ष्मण राम, कुन्दन प्रसाद, भुनेश्वर प्रसाद कर्ण एवं कल्पना भट्टाचार्य।

स्थापना के पश्चात् निगम से भवन की माँग की गई, परन्तु कोई प्रगति का आसार नहीं नजर आया। बाध्य होकर लोकप्रिय प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी को परिषद का

ध्यान दिलाया गया। इसके पश्चात् निगम ने १९८० में परिषद को भवन आवंटित किया।

१९८० में निवन्धन सोसाइटी एक्ट (विहार) के अन्तर्गत परिषद का निवन्धन कराया गया।

इसके पश्चात् निगम से संघर्ष प्रारंभ हुआ। परिषद को मान्यता देने का निवेदन किया गया मगर निगम ने मान्यता देने से स्पष्ट इंकार कर दिया। तत्पश्चात् भूतपूर्व सांसद (राज्यसभा) एवं सदस्य, अखिल भारतीय राजभाषा समिति माननीय श्री जगदम्बी प्रसाद यादव के प्रयासों से निगम द्वारा परिषद को मान्यता प्रदान की गई।

परिषद द्वारा १९८२ में सन्तुलसीदास पुरस्कार योजना आरम्भ की गई। इसके अन्तर्गत निगम स्तर पर माध्यमिक परीक्षा के हिन्दी पत्रों में जो विद्यार्थी सर्वाधिक अंक प्राप्त करते हैं, उन्हें पुरस्कृत किया जाता है। आज तक बारह छात्र/छात्राओं को पुरस्कृत किया जा चुका है। इसके अलावे कवीर वाद-विवाद

प्रतियोगिता एवं प्रेमचन्द निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन भी समय-समय पर किया जाता है।

परिषद् के कार्यकाल में अबतक दो बार अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें काका हाथरसी, कुबेर नाथ मिश्र 'विचित्र' आदि कवियों ने भाग लिया।

परिषद् के पुस्तकालय में ढाई हजार पुस्तकें उपलब्ध हैं तथा वर्तमान सदस्य संख्या लगभग दो सौ है। परिषद् के विकास में निगम के

तत्कालीन अध्यक्ष श्री प्रेमचन्द लूधर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परिषद् के अध्यक्षों में श्री मो. तलहा एवं श्री भुवनेश्वर प्रसाद सिंह का कार्यकाल अवतक सर्वोत्तम रहा। इन्हीं दोनों अध्यक्षों के कार्यकाल में इन्हीं सम्मेलनों का आयोजन भी संभव हुआ।

वर्तमान सत्र में पत्रिका का प्रकाशन परिषद् की विशेष योजना है। अस्तु, परिषद् विकास की ओर निरन्तर अग्रसर है और आशा है, भविष्य में परम वैभव से युक्त होगी।

संत तुलसीदास पुरस्कार योजना

[अखिल निगम स्तर पर १९८२ से प्रारंभ]

क्र. सं.	वर्ष	विजेता	स्थान	अर्जित अंक
१.	१९८२	कुमारी नीलिमा	मैथन	७६.६%
२.	१९८३	तारकनाथ सरकार	बोकारो थर्मल	८२.६%
३.	१९८४	श्रेयस्पति मिश्र	मैथन	७५.३३%
४.	१९८४	रवि प्रकाश	मैथन	७५.३३%
५.	१९८५	शिवेन्द्र प्रसाद	चंद्रपुरा	७७.३%
६.	१९८६	सुशांत कुमार	तिलैया	७८.६७%
७.	१९८७	कुमार प्रभाष	तिलैया	८२.६%
८.	१९८८	सुनील कु. चौधरी	चंद्रपुरा	७६.६%
९.	१९८९	संतोष कुमार	पंचेत	७०.६६%
१०.	१९९०	प्रभंजन कुमार	मैथन	७८.६%
११.	१९९१	नलिनी रंजन	बोकारो थर्मल	७३.६%
१२.	१९९२	कुमारी बबीता	चंद्रपुरा	७९.६%

श्री रामनारायण प्रसाद परिषद् के पितुमातुसहायकस्वामिसखा

अरविन्द त्रिपाठी

साहित्य-सृजन जितना महत्त्वपूर्ण कार्य है, साहित्य का जन-जन तक प्रचारित-प्रसारित होना भी उतना ही आवश्यक। इस कार्य में साहित्यकारों के साथ ही ऐसे व्यक्तियों की भी पंक्ति मिलती है, जो कलमकार नहीं होते।

ऐसी ही विभूतियों में दा. घा. नि. में परिचालक पद पर कार्यरत श्री रामनारायण प्रसाद का नाम श्रद्धा से लिया जा सकता है। निगम में जिस समय हिन्दी में हस्ताक्षर करने पर पाबंदी थी, संघर्ष के धनी श्री प्रसाद ने राजभाषा को निगम में संग्रहण दिलाया।

राजभाषा को सम्मान देने की प्रबल कामना के फलस्वरूप ही निगम के कर्तिपय कर्मचारियों के सहयोग से उन्होंने 'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना की। आज परिषद् विहार मरकार से पंजीकृत, निगम से मान्यता प्राप्त एवं भवन, पुस्तक आदि से गुमजित है।

श्री प्रसाद ने न सिर्फ राजभाषा के लिए ही वरन् अन्य सामाजिक कार्यों के लिए भी महत्त्वपूर्ण संघर्ष कर अपनी पहचान मनाई एवं आज उनकी अलग ही पहचान है। हिन्दी साहित्य परिषद् के वे 'पितु मातु सहायक स्वामि सखा' हैं। श्री प्रसाद १९९४ में निगम से सेवानिवृत्त हो रहे हैं। इस रिक्तता को कौन भरेगा?—इस प्रश्न का समाधान भविष्य के अधर में है।

मैंने श्री प्रसाद को बहुत ही नजदीक से देखा है। इनके व्यक्तित्व में अनुशासनप्रियता, निरपेक्षता, निर्भीकीता, परिषद् के लिए संविधान के प्रति आस्था, परिषद् के लिए सर्वस्व-अर्पण, अपने विचारों के प्रति दृढ़ता जैसे पूरी तरह समाहित हैं।

श्री प्रसाद के अभिभावकत्व में परिषद् का कितना विकास हुआ है, यह पत्रिका ही प्रमाण है। यदि श्री प्रसाद को सर्वश्री मो. तलहा एवं भुजेश्वर प्रसाद सिंह जैसे अध्यक्षों

की ओर कुछ वयों तक छूटाया
मिली होती तो परिपद का दिकाम
चौगुना हुआ होता ।

पत्रिका के प्रकाशन में अनेक
प्रकार की बाधाएँ आई, परंतु श्री
प्रसाद को सर्वश्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह
एवं विजय कुमार वर्मा के अपेक्षा से
अधिक सहयोग के कारण किसी तरह
की परेशानी नहीं हुई ।

हाँडाकि इनमें अन्यों को
शिकायत भी रही और मुझे भी ।
परंतु अन्य लोगों की तरह मैं भी
इस व्यक्तित्व का सम्मान करता हूँ ।
मैं इस सत्य को स्वीकारता हूँ कि श्री
प्रसाद जैसे व्यक्तित्व की राष्ट्र को
ज़रूरत है ।



तीन छोटी कविताएँ

□ चन्द्रशेखर त्रिपाठी

समानांतर रेखाएँ

मुना है
दो समानांतर रेखाएँ
अनंत पर जाकर मिलती हैं
यदि यह सच है
तो मैं तुमसे ज़रूर मिलूँगा ।

बचपन

कुछ सरल कुछ कठिन चित्तवन
कभी हास्य कभी क्रंदन
जिज्ञासु मन
जैसे—
अभियांत्रिक आरेखण में
सरल रेखा का प्रक्षेपण ।

जीवन

जीवन—एक निश्चित समाकलन
किन्तु
जिसकी निम्नतम और उच्चतम
सीमा मालूम नहीं ।



‘पुंलिंग’ या पुलिङ्ग’

प्र० शालिग्राम उपाध्याय

हिंदी में पुलिङ्ग शब्द एक समस्या है। संधि-विच्छेद करने पर वह पुम् (पुरुष) + लिङ्ग (लक्षण, चिह्न) है। हिंदी की विभिन्न पुस्तकों में चाहे वे व्याकरण की हों या साहित्य आदि की, इसके विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं—‘पुलिङ्ग’, ‘पुंलिंग’, ‘पुलिङ्ग’, ‘पुलिंग’ और ‘पुलिङ्ग’।

तत्सम शब्दों में हिंदी भी संस्कृत का ही अनुगमन करती है। अनुस्वार संवंधी कुछ नियम हिंदी के अपने भी हैं, अतः हिंदी की वर्तनी में कभी-कभी संस्कृत से अंतर आ जाता है। ‘हिन्दी’ शब्द को ही देखें। अनेक विद्वान् इसे सानुस्वार ‘हिंदी’ लिखते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा इसी का प्रचार करती है। अन्य विभिन्न संस्थाएँ ‘हिन्दी’ परस्वर्ण करके लिखती हैं या लिखने के लिए आग्रह करती हैं।

मोनियर विलियम के संस्कृत कोश में ‘पुलिङ्ग’ शब्द आदि सानुस्वार मिलता है, सानुनासिक नहीं।

संस्कृत में सानुनासिक (पुलिङ्ग) और सानुस्वार (पुलिङ्ग) दो ही रूप हो सकते हैं। हिंदी में ‘लिङ्ग’ को ‘लिंग’ भी होना पड़ता है; अतः अनुनासिक और अनुस्वार पक्ष में दो और वैकल्पिक रूप। यहाँ ध्यान देने की बात है कि ‘पुलिङ्ग’ या ‘पुंलिंग’ रूप कैसे साधु हैं?

यह तो पहले ही स्पष्ट किया गया है कि पुम् + लिङ्ग ही संधि होकर एक शब्द बना है। ‘पुम्’ में ‘म्’ के अनुस्वार पक्ष में ‘पुलिङ्ग’ या हिंदी में ‘पुंलिंग’ साधु प्रतीत होता है। अनुनासिक पक्ष में ‘पुम्’ के ‘म्’ का जब परस्वर्ण होगा तब ‘लिङ्ग’ में ‘ल्’ का ही सर्वर्ण होगा अर्थात् ‘म्’ का परस्वर्ण ‘ल’ ही होगा। किंतु स्मरण रखने की बात है कि अनुनासिक पक्ष में यह परस्वर्ण सानुनासिक ही होता है। अतः ‘म्’ का परस्वर्ण ‘ल्’ न होकर ‘ल्’ होगा। आप कहेंगे, यह तो अद्भुत निकला ‘ल्’ हलत भी और सानुनासिक भी, यह कैसे हो सकता है? अनुस्वार या अनुनासिक तो स्वर वर्ण पर ही

रहते हैं। किंतु, अब मेरी वात न मुनकर संस्कृत व्याकरण के उदाहरण देखिए—अनुरवारस्य यथि परे परसवर्णः (८/४/५८), 'वापदान्तस्य' (८/४/५९) तथा 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम् (१/३/१०) के प्रसंग में भट्टोजिदीक्षित ने 'अत्रानुस्वारस्य पक्षेऽनुनासिका यवलाः' लिखकर सम् + यन्ता = सॅँयॅँयन्ता, 'संयन्ता', सम् + वत्सरः = सॅँवॅँवत्सरः, 'संवत्सरः', यम् + लोकम् = यॅँलॅलोकम्, यंलोकम् उदाहरण दिए हैं। ऐसे ही हेमपरेवा (८/३/२६) सूत्र और 'यवल परे यवन्ता वेति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के उदाहरण के प्रसंग में किम् + ह्यः = किं ह्यः, कियॅँ ह्यः; किम् + ह्वलयति = किं ह्वलयति, किवॅँ ह्वलयति; किम् + ह्लादयति = किं ह्लादयति, किलॅ ह्लादयति आदि उदाहरण दिए हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुम् + लिङ्ग = 'पुलॅ-लिङ्ग' या 'पुंलिङ्ग' रूप ही साधु हैं, निरनुनासिक 'पुलिंग' या 'पुलिङ्ग' नहीं। हिंदी के अनेक व्याकरणों में कामता प्रसाद 'गुरु' तथा किञ्चोरीदास वाजपेयी के हिंदी व्याकरण और शब्दानुशासन में निरनुनासिक रूपों की भरमार है। अतः वाद के हिंदी वैयाकरणों तथा अनेक साहित्यकारों ने भी निरनुनासिक किंतु दो लकार वाले 'पुलिङ्ग' या 'पुंलिङ्ग' शब्दों का प्रयोग किया है, जो संस्कृत के नियमों के आधार पर

ठीक नहीं। सानुस्वार तथा दो लकारों वाला रूप 'पुंलिङ्ग' भी अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है जो कथमपि साधु नहीं।

फिर 'पुलिङ्ग' शब्द को क्या समझा जाए? पुम् + लिङ्ग = 'पुंलिङ्ग' सानुस्वार ठीक। दो लकार होने पर अर्थात् सानुनासिक परसवर्ण होने पर पुम् के 'म्' का 'ल्' भी हो गया और अनुनासिकता 'पु' पर चली गई है, जो ठीक नहीं। जब 'ल्' सानुनासिक होगा तो उसका चिह्न 'पु' पर क्यों लगाया जाए? क्या 'संस्कर्ती' और 'पुँस्कोकिलः' को देखकर? 'संस्कर्ती' और 'पुँस्कोकिलः' में 'सम्' या 'पुम्' के 'म्' कार को संस्कृत व्याकरण के आधार पर 'मुट्' का आगम हुआ है और पूर्व में अनुनासिकता का विधान है—'अत्रानुनासिके पूर्वस्य तु वा।' आप सोच सकते हैं कि फिर यह भी तो अनुनासिक प्रकरण है तो 'पुम्' में पूर्व 'पु' को क्यों न सानुनासिक लिखा जाए। वहाँ 'अत्रानुनासिके' में 'अत्र' शब्द 'रू' प्रकरण के लिए आया है अर्थात् जिस शब्द में 'म्' को 'रू' होता है, वहाँ अनुनासिकता पूर्व में होती है। 'पुलिङ्ग' में रूत्वादि का विधान नहीं। अतः 'पुंलिङ्ग' या 'पुंलिङ्ग' भी हिंदी में लिखना एक समस्या है। हिंदी के अनेक विद्वान् ऐसे भी लिखते हैं। ये रूप हिंदी में कहाँ तक ठीक समझे जाएँगे। □

विवाह के अवसर पर गाये जानेवाले बिहार के मंगल गीत

डॉ० रामरक्षा मिश्र विमल

विवाह स्त्री-पुरुष के सह-संबंधों का मुहूर्चिपूर्ण संस्कार है। वैवाहिक जीवन स्त्री-पुरुष के परस्पर सहयोग पर निर्भर है। इसके मूल में रति भावना है और इसे हर संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकृति मिली है। इस प्रकार की परंपरा हर देश में दृष्टिगत होती है। भारतीय परंपरा में विवाह एक मांगलिक कार्य के साथ-साथ एक ऐसे लोकोत्सव के रूप में भी स्वीकृत है, जिसे पुरुषार्थ-चतुष्पदों की सिद्धि के लिए दायित्वपूर्ण जीवन-यापन करने की पहली महत्त्वपूर्ण घटना माना जाता है।

भले ही पंडित जी विवाह की हर रस्म विधिवत मंत्रोच्चार के साथ संपन्न करा दें, किन्तु गाँवों में महिलाओं को तब तक मंतोष नहीं होता, जब तक वे उन मंत्रों के साथ ही अपेक्षित मंगल गीतों को नहीं गा लेतीं। महानगरों में रहनेवालों को उनका ल्य-सुर भले ही अच्छा न लगे, किन्तु उक्त अवमर

पर वर या कन्या—किसी भी पक्ष से महिलाओं का मामूलिक गान मुनायी नहीं पड़ने पर अतिथि पक्ष अपने को अपमानित अनुभव करता है। और, उस बक्त तो हद ही हो जाती है, जब खाने के समय महिलाएँ ‘गाली’ नहीं गाती हैं और परिणामस्वरूप अतिथिवर्ग रुठकर खाना छोड़कर ‘ठहर’ (भोजन-स्थान) पर से चल देता है। इस प्रकार, ये मंगल गीत लोक-संस्कृति के अनिवार्य अंग बन गये हैं।

विवाह की प्रथाएँ अलग-अलग क्षेत्रों तथा अलग-अलग जातियों में भिन्न-भिन्न होती हैं और इसलिए इस अवसर पर गाये जानेवाले मंगलगीतों में भी विविधता पायी जाती है। वर और कन्या पक्ष के मंगलगीत अलग-अलग होते हैं। महिलाएँ इन गीतों को बड़ी ही तन्मयता और लय बढ़ता के साथ समूह में गाती हैं। यहाँ, इस अवसर पर गाये जानेवाले बिहार के कुछ मंगल गीत द्रष्टव्य हैं।

विवाह का पहला दृश्य तिलक
का होता है। इसमें कन्या पक्ष वर
पक्ष के यहाँ जाकर वर की पूजा
करते हुए तिलक चढ़ाता है। दो
अपरिचित पक्षों के पारस्परिक संबंध
की शुरुआत यहीं से होती है। इस
अवसर के गीत इस प्रकार हैं—

कहौंवा के तिलकहरू,
तिलक लेले ठाढ़ भइले
कहौंवा के बाबू कुँआर,
तिलक ना चढ़ावे।

तिलक गिनले कवन बाबा
अनकि-झनकि बोले
मोर बचवा पढ़ल पंडितवा
तिलक बड़ा थोर बाड़े।

[भोजपुरी]

झारी ना अनजान राम
अपनी दुआरि हे
बइठ ना तिलकहरू
भैँडुआ जाजिम बिछाइ हे॥

[मगही]

ठगि लियो लइका हमारा रे
समधी बइमाना।

विवाह के अवसर पर सभी बेटी-
वहनें नैहर (मैके) बुला ली जाती
हैं। तिलक के बाद से ही विवाह तक
कन्या पक्ष के यहाँ नित्य शाम को
महिलाओं की मंडली जमती है और
भिन्न-भिन्न प्रकार के मंगलगीत गाये
जाते हैं। इस अवसर का एक गीत
देखें—

केड़ जड़हें पुरुष चनवा
केइ जड़हें पछिम चनवा है
आरे माई केड़ जड़हें
बहिना के लियावन चनवा
बहिनिया बीनू ना सोभे मँडवा रे।
बावा जड़हें पुरुष चनवा
चाचा जड़हें पछिम चनवा है
आरे माई भड़या जड़हें
बहिना के लियावन चनवा
बहिनिया बीनू ना सोभे मँडवा रे।
[भोजपुरी]

विवाह से पूर्व वर और कन्या-
दोनों की अपने-अपने घर पर हल्दी
की मालिश होती है। हल्दी लगाने
का यह काम गाँव-घर की महिलाएं
एक साथ गाते हुए करती हैं। वर
और कन्या पक्ष के कुछ हल्दी गीत
इस प्रकार हैं—

लाल रंग हरदी पियर
रंग चाची हो।
हाली-हाली हरदी चढ़ाई
मोर चाची हो।
हरदी के झाँस-झूँस
सहलो न जाला हो।
हमरो अनजान बेटी
अति सुकवार हो।
[भोजपुरी]

हल्दी-हल्दी जिरवा पातरी।
आगे माई, के मोरा
हल्दी चढ़ाइल... ...
आगे माई, दादा मोरा
हल्दी चढ़ाइल... ...।
[मगही]

कन्या पक्ष को जब यह पता
चल जाता है कि बारात गाँव में
प्रवेश कर चुकी है, तो महिलाएँ
समवेत स्वर में गाने लगती हैं—

आपन खोरिया बहार
ए अनजान बाबा
आवतरे दुल्हा, दमाद हो ॥
बड़ठे के माडे
दुल्हा पलड़ गलइचा
लड़ने के माडे मएदान हो ॥

[भोजपुरी]

और, ज्यों ही बारात दरवाजे
तक पहुँचती है कि मंगल गीतों के
माध्यम से महिलाएँ गालियों की झड़ी
लगा देती हैं—

हथिया-हथिया सोर कइले
गदहो ना ले अइले रे ।

[भोजपुरी]

अगड़ा के खगड़ा भँड़ुआ
डभकोल के बाजा रे ।
दुर बहिन के चोट्ठा साला
गाँव के हँसवले रे ।

[मगही]

इन गीतों में बारातियों के लिए
जहाँ अटपटे शब्दों का प्रयोग होता
है, वहाँ दूल्हे के लिए वडे ही सम्मान-
जनक और प्रिय शब्दों का । दूल्हा
अपनी दुल्हन के घर पहुँचता है तो
मर्वप्रथम द्वारपूजा करनी पड़ती
है; इसके बाह ही उसे घर के अन्दर
जाने की अनुमति मिलती है—

आली देखु री भरि नयना
नवल दुल्हा ।

अरछि परछि लाउ सजनी
अंगनमा ।
हे नवल दुल्हा, अवि देखु
भरि नयनक नवल दुल्हा... ।
परम मुन्दर चार वर
चितचोरवा हे नवल दुल्हा ॥
[मैथिली]

शीशे के लगे दरवाजे
दामाद हमारे आये ।
जाके कहो कोई ससुर से
महफिल सजा के रखे ।
महफिल सजानेवाले
दामाद हमारे आये ।
इसके बाद की महत्वपूर्ण रस्म
गुरहत्थी (गृहस्थी) की होती है ।
इस अवसर पर ससुराल से लाये गये
जेवर जेठ (दूल्हे के बड़े भाई) द्वारा
दुल्हन को चढ़ाये जाते हैं—

मोरी स्याम सुन्दर गोरी
के गुरहत्थे अइले भस्सुर ।
टीका देलीं चढ़ावे के
त पेन्ह लेले भस्सुर ।
मोरी स्याम सुन्दर गोरी
के गुरहत्थे अइले भस्सुर ।
नथिया देलीं चढ़ावे के
त पेन्ह लेले भस्सुर ।
[भोजपुरी]

भस्सुर (जेठ) की उक्त रस्म के
पूरा होते ही दूल्हा फिर मङ्गवे में
लाया जाता है और उसका परिचन
(परीक्षण) किया जाता है—

आजु जनकपुर आनन्द छाइ
अवधपुर सैंला श्रीराम
सखि मिलि करियनु चुमान ।

दुभि अच्छत लय,
मुनि सब आओळ
शुभ शुभ शब्द मुनाव
सखि मिलि करियनु चुमान ।
[मैथिली]

अँखिया तोरी निरेखूं
रे दुलहा कजरो ना रे ।
मझ्या तोरी बउराहिनि
वर परिछहूं ना जानी
रे दुलहा कजरो ना रे ।
[भोजपुरी]

घर से बाहर भेल अपन सासु
इयरी पियरी लाये सोने के परात लेले
पहले परछिया अपन धिया
तब रे दुलरैते पूता ।

[मगही]

विवाह की सर्वप्रधान रस्म
कन्यादान है । इसके पूरा हो जाने
के बाद बेटी अपने माता-पिता, भाई-
बहन सबसे रिश्ते-नाते तोड़ चुकी
होती है । जिस बेटी का लालन-पालन
पिता लाड़-प्यार से करते हैं, जिसे
अपनी आँखों से कभी ओझल नहीं
होने देते, उसी को दानस्वरूप दूसरे
को देते वक्त उन्हें कितनी तकलीफ
होती है—उक्त अवसर पर गाये जाने
वाले गीतों में स्पष्टतः व्यंजित होती
है । इन गीतों को युनकर सहृदयों का
रोते-रोते बुरा हाल हो जाता है—
धीरे वहे गंगा मधुरे वहे जगुना
गरजू बहेला मँझधार हो ।

ताही पहसी बाबा हो थर-थर कामिने
कइसे करब कन्यादान हो ।
कौन गरहनिया बाबा साँझहि लागेला
कौन गरहनिया भिनसार हो ।

कौन गरहनिया बाबा
मड़वा बीचे लागेला
कब होइहें उगरास हो ।

सुरुज गरहनिया बेटी
मड़वा बीचे लागेला
भोरे होइहें उगरास हो ।

[भोजपुरी]

ओरी तरे ओरी रे तरे
बइठे वर रे नेतिया ।
हमरो अनजान हो बेटी
आँखि के रे पुतरिया ।

[भोजपुरी]

छत्तिस सौ रुपया लेले
बइठला दुलरैते बाबू
कइसे करब कन्यादान, गे माई ।
धीया गिरल सजन
हाथ जी दादा ।
अब दादा सुतिहें
निश्चित गे माई ।

[मगही]

कौन बन बोल्य कारी कोइलिया
कौन बन बोल्य मयूर हे ।
कौन घर बोल्य सीता हे दुलारी
अब सीता रहली कुमारि हे ।...
अपना जोग बाबा समधी जोहब

नग जोगर वरियात हे ।
सीता जोगर बाबा लायब जमैया
देखत जनकपुर लोक हे ।
[मैथिली]

इसके बाद सिन्दूर-दान और सात फेरे (सप्तपदी) होते हैं और रात भर महिलाओं के गाने का क्रम चलता रहता है। इस अवसर पर जानेवाले गीतों के कुछ अंश देखें—

दुलहा सिंदूर लियौ हाथ
सोन सुपारीक साथ ।
सीता उधारि लियौ माँग
सिन्दूर लै लाय ।
रामजी के माथ में
शोभनी मौरी ।
सीता पुजथी सभ दिन,
गौरी सीधा उधारी लियौ ।

[मैथिली]

केकरा ही नदिया रे झिलमिल पनिया,
केकरा ही नदिया सेवार ।
केकरा ही नदिया रे चेल्हवा मछरिया
लावेले कवन दुलहा जाल ।

[भोजपुरी]

कहाँ केरा सिंदूरिया
सिंदूर लेले खड़ा है न
कहाँ के नया दुलहिन
सिंदूर वेसाहले न ।

[मगही]

ईहो नवि कोवर मलिनो न भेलै
अपने चल्ल परदेश हे,
अपने त जाइछी प्रभु
देश रे विदेशवा ।
हमरा के
कहाँ छोड़ले, जाय हे । ...

[मैथिली]

इन मंगलगीतों के नायक बड़े
ही ढीठ (धृष्ट) हुआ करते हैं ।

सास जी इन्हें जो भी सलाह देती हैं,
उसके ठीक विपरीत इनका आचरण
होता है—

बाग जनि जडहड ए दुलहा
बगइचा जनि हो जडहड ।
लागल टिकोरवा ए दुलहा
छोड़वले जनि हो अडहड ।
बाग हम जडवो ए सासु
बगइचा हम हो जडवो ।
लागल टिकोरवा ए सासु
छोड़वले हम हो अडवो ॥

[भोजपुरी]

विवाह के दूसरे दिन मथुरकी
तथा कच्ची खाने के समय भी महि-
लाएँ मधुर गीत गाती हैं और भोजन
करने के समय तो वर पक्ष के लोगों
पर गालियों की झड़ी लगा देती हैं—
'तहरा माई के अतवार लागेला,
सोमार लागेला……' आदि
आदि । ये गालियाँ स्त्रियों की खीझ
को भले ही प्रकट करती हों, किंतु
यदि वर पक्षवालों को सुनायी न
जायें तो वे रुठ जाते हैं और काफी
दुःखी होते हैं ।

विवाह का अंतिम दृश्य कन्या
की विदाई का होता है। इस अव-
सर पर गाये जानेवाले गीत बहुत
ही हृदयस्पर्शी होते हैं ।

वर रे जतन से
सिया धिया पोसलौं
से हो धिया राम लेले जाय ।
हिलि लियौ मिलि लिवौ
सखि हे सहेलिया
आव धिया सासुर जाय ॥

[मैथिली]

सुरुज के जोतिया बाबा मोरा
 ना सोहाला,
 गोर बदन कुम्हिलाय।
 कहतू त ए बेटी तमुआ तनइतीं,
 अउरु उठइतीं छत्र-छाँह।
 होत भिनसहर बाबा बोलिहें चुचुहिया,
 लगबो सुनर बर साथ।
 कटोरे-कटोरे बेटी दुधवा पियवलीं,
 पुतवो से अधिका दुलार।

दुधवा के लीखि बेटी देवहूँ ना कइलू
 चललू सुनर बर साथ।
 काहें के ए बाबा दुधवा पियवलू
 काहें के कइलू दुलार?
 जानते त रहलू बाबा धियवा पराया
 काहें के कइलू दुलार?
 दुधवा के लीखि दीहें भइया हो
 अनजान भइया,
 जिन होइहें वंस तोहार।
 [भोजपुरी]

विवशता

□ डॉ० रामप्यारे तिवारी

हर बार तुमसे
 मैं टकराता रहा हूँ।
 क्या करूँ?
 विवश हूँ।
 तुम्हारी ऐंठ मुझे
 दंशन देती रही है
 तुम्हारी वेतुकी बातें
 बार-बार मन को सालती हैं
 जब मेरे कान
 थक जाते हैं—
 मन भ' जाता है—
 तो मैं उबल पड़ता हूँ।
 लोग
 इसे हम दोनों की आदत
 समझते हैं
 और,

उपहास में परिहास
 मान लेते हैं।
 लेकिन—
 तुम समझते हो या नहीं
 मैं नहीं कह सकता।
 तुम्हारी बदन्वलन हरकतों पर—
 बेहूदी बातों पर—
 असभ्य अशिष्ट आचरण पर—
 पशुवत् कर्मों पर—
 मैं अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता हूँ।
 प्रतिहिंसा की अग्नि में
 तड़पने लगता हूँ।
 फि दूसरे क्षण
 कुत्ते की दुम हिलने लगती है।
 मैं विवश हो जाता हूँ—
 तथागत की मुद्रा में
 फिर मौन हो जाता हूँ।

कहानी [अत्मोड़ा से]

दीप बुझ गया

प्रेमचन्द

कुछ खाया आपने ?
क्या कह रही हो ?
कह रही हूँ, कुछ खाया ?
अरे छोड़ो खाने को । पहले यह
बताओ तुम्हारा क्या हाल है । कुछ
है आराम ?

होगा न आराम । जाइए
पहले खा कर आइए, तब बैठिए ।
अरे, जाता हूँ न, अभी तो आ
रहा हूँ । जरा सुस्ता लें । हाथ-गोड़
धोयेंगे तब न खायेंगे ? ऐसी क्या
जल्दी है ?

अच्छा, आज आप अभी को आ
रहे हैं । क्या कर रहे थे इतनी देर
तक ? रोज आपसे कहती हूँ कि
जल्दी चले आया कीजिए दुआरे ।
क्या जरूरत है खेते-खेतारी जाने की ?
जब उन्हीं लोगों को गरज नहीं है,
तो जो होगा सो आएगा ।

क्या करें, बैठे-बैठे जी ऊव
जाता है तो धूम आते हैं । जी आन-
मान हो जाता है । आखिर सब दिन
किये हैं, बैठा नहीं रहा जाता ।

अच्छा, जाइए पहले खा
लीजिए । रसोई घर की आलमारी में

हैंडिया में सतुआ है । उसी आलमारी
में अचार भी है । अचार से खाने का
मन हो तो अचार से, अगर गुड़ से
खाने का मन हो तो गुड़ भी उसी में
है । हिम्मत नहीं पड़ी, नहीं तो
खिचड़ी डाल देती । आपसे कहा कि
मुनियाँ की माँ को पिसान दे आइए ।
दो रोटी सेंक देती तो सुना ही
नहीं ।

एक दिन रोटी नहीं खाऊँगा तो
नहीं बनेगा ? सुना नहीं उस दिन
उसका ? कह रही थी कि वहुओं को
तो बेटवन के साथ भेज दिया गुलछरा
उड़ाने । अब रोज दूसरे-तिसरे—
“दो रोटी मेरा भी सेंक देना रे
मुनियाँ की माँ । यही लगा रहता है
इनका !”

जरा मेरे आगे आकर कहे, तब
बताऊँ । कब बनाकर खिलाती है
हमें । एक न एक काम उसी का
लगा रहता है । ले देकर एक तो
बहू है उसके, न-रात ढाहती रहती
है । न पेट भर खाने को दे और न
उसका पहनना-ओढ़ना देख सके ।

इस प्रकार विटिया-बहू रहती है कही? विटिया-बहू लातिर बड़ा कलेजा चाहिए। अपनी बहुओं को बेटवन के साथे कर दिया तो उसका क्या? यही उमर समय है। अब नहीं साथे रहेंगे तो कब रहेंगे। फिर हमारे बेटे अपने हाथे रोटी रोकेंगे तो बहुओं के रहने का कौन सुख। इस कमाई से क्या फायदा। अरे, अपना क्या! दो-दो रोटी से मतलब है। जब तक पैरुख है बना लेती हैं। नहीं तो कोई न कोई आयेगा ही।

तुम भी खूब कहती हो। जब आयेंगे तब आयेंगे। आज कोई आ रहा है? एक लोटा पानी देने वाला कोई नहीं है। छह बेटों की माँ होने का तुमको कौन सा सुख मिला?

मेरे लिए इतना बहुत है कि सब जगह-जगह लग गये। अपना कमाखा रहे हैं। और क्या चाहिए। एक लोटा पानी की हमको जरूरत नहीं है। खटिया नहीं कटा है कि एक लोटा पानी नहीं लेकर पी सकती। आज आपको अपने से लेकर खाना पढ़ गया तो ऐसे कह रहे हैं। बैठिए, मैं आपको लाकर देती हूँ, खाइए।

तुम तो तनिक में नाराज हो जाती हो। मेरे कहने का यह मतलब नहीं है। कहने का मतलब यह है कि हम लोगों की बुद्धाई आयी। एक को यहाँ आकर रहना चाहिए।

खूब कहा कि आपके लिए अपनी नौकरी छोड़कर यहाँ आ जायें। यहाँ

गोना गड़ा है कि आकर लायेंगे, अरे, जब रिटायर होंगे तब बुझी आयेंगे। यहाँ तो एक न एक दिन आना ही है। अभी आकर क्या करेंगे?

ठीक है जब तुम्हीं नहीं चाहती हो, तब मुझे क्या।

हाँ-हाँ, मैं नहीं चाहती। जाइए आज के दिन सतुआ खा लीजिए। कल सबेरे रोटी बनाऊँगी तो खाना।

कहीं वात का बतंगड़ न बन जाय, ऐसा सोचकर भगवानदास उठे, चुपचाप रसोई तक गये। किवाड़ खोला। कमरे में था घोर अँधेरा। जेब से माचिस निकाल कर दीप जलाया। तेल पेंदी में था। आल-मारी खोलकर सतुए की हाँड़ी निकालते-निकालते दीप बुझ गया। उन्हें लगा जैसे इस सत्तू के साथ सारा जीवन ही बिखर गया हो, वह भी इस कदर कि समेटना भी असंभव हो। कुछ देर खड़े सोचते रहे। अब क्या हो। कल बुढ़िया हल्ला मचायेगी। जमीन सर पर उठा लेगी। कहेगी आप किसी लायक नहीं हो। मैं तिनका-तिनका जोड़ती हूँ। आप सब मिट्टी में मिला देते-हो। मेरा तो करम फूट गया।

कल की वात तो कल है। आज क्या बहाना बनाऊँ। जब वह पूछेगी-खा लिया। तोप ढाँक दिया सब ठीक से? कह दूँगा-हाँ-हाँ, जैसे था वैसे

ही, पर यह नहीं कह सकूँगा। कह दूँगा—खाते-खाते दिया बुझ गया। गब वैसे ही छोड़कर किवाड़ उढ़का दिया। साँकल मुझसे नहीं चढ़ा। और सबेरे कह दूँगा—कुत्ता या बिल्ली किवाड़ ठेलकर चला गया अब उसके लिए मैं क्या करूँ। फिर धोती और पैर पर लगे सत्तू को झाड़कर बाहर गये। हाथ-मुँह धोया। जैसा कि भोजन बाद करते थे। फिर बाहर जाकर पेशाव किया और फिर एक लोटे में पानी लेकर बुढ़िया के पास गये।

बूढ़ा !

क्या ? खा लिया आपने ?
लो, तुम भी पानी पी लो।

पानी ! यह आपसे किसने कहा ?
कहेगा कौन ? देख रहा हूँ तुमसे उठा नहीं जा रहा। सबेरे से उसी तरह हो, कुछ खाया नहीं, लो पानी पी लो।

बुढ़िया की आँखों में आँसू भर आये। बोली—क्यों मेरा धरम विगाड़ रहे हैं। अब आप मुझे पानी लोकर देंगे तो मैं पानी पीयूँगी ?

तो क्या हुआ। आखिर कौन है यहाँ पानी देने वाला दूसरा ? छोड़ो यह धरम-करम। धरम-करम तो तब देखा जाता है जब शरीर में धरम-करम पालन करने की शक्ति होती है।

नहीं, मैं पानी नहीं पीयूँगी। रख दीजिये। सबेरे उठूँगी तब देखा जायेगा। और भी, आज एकादशी है। आप जानते हैं कि आज मैं व्रत रहती हूँ। आज तो वैसे ही नहीं पानी पीयूँगी।

अब यह व्रत रखने की कौन सी जहरत है।

वेटों के लिए। आपसे मतलब। जब मैं आपके पूजा-पाठ में रोक-टोक नहीं करती, तब आप क्यों खोद-विनोद करते हैं।

अरे भई, वेटे तो अब सवान हो गये। वेटवा-पतोहवाले हो गये। अब उनको क्या हो जा रहा है।

देखिए, जवान पर लगाम लगाये रहा कीजिए। बुड़ाय गये, लेकिन बोलने नहीं आया। इससे क्या ? वेटे बहवाले हो जाने से अब वे हमारे वेट नहीं रह गये ?

यह तो मैं कह नहीं रहा।

तब चुप रहिए। पानी नीचे रख दीजिए और जाकर सोइए।

भगवानदास से एक दो बार फिर कहा, परन्तु बुढ़िया के तर्क के आगे उनका पांडित्य फेल हो गया। लोटा वहीं रखकर किवाड़ उढ़काकर बगल के कमरे में सोने चले गये। सोने के पहले विनयपत्रिका के बीसों पद गाये। नीद फिर भी पास नहीं फटकी। नीद वैसे भी बुड़ौती की दुश्मन होती है, परन्तु आज कुछ अधिक बेचैनी थी।

बार-बार गीतों में मन बहलाने की कोशिश करते रहे। बीड़ी पीते रहे! पलक तक न लग रही थी। घंटे जाघे घंटे बाद उठकर बुद्धिया की खाट तक जाते। आहट लेते। पूछते कि तबीयत कैसी है। फिर आकर अपनी खाट पर बीड़ी सुलगाते भजन गाते, सोने का उपक्रम करते।

इसी प्रकार फिर उठे और बुद्धिया के पास जाकर हाल पूछा—“कैसी तबीयत है बूढ़ी?”

ठीक है। आप सोते क्यों नहीं, क्यों अपनी नींद खराब कर रहे हैं? बुद्धिया ने कहा।

भगवानदास कुछ देर तक बुद्धिया के मुख की ओर देखते रहे। आँखें बंद थीं। साँस कभी तेजी से और कभी धीरे-धीरे चल रही थी। मुख देखने से लग रहा था पीड़ा असह्य है। आँखों में आँसू भर आये। जी में आया चुपचाप यहाँ पाटी के पास कुर्सी पर बैठे रहें। कुछ देर खड़े रहे। फिर यह सोचकर कि कहीं आहट पाकर वह फिर न जाकर सोने के लिए कहे, सोने के कमरे में चले आये। खाट पर लेट गये। इस बार भजन गाना अच्छा न लगा। हृदय में हूक-सी उठने लगी। कलेजा मुँह की ओर आता-सा जान पड़ा। आँखों से वरवस आँसू बरसते रहे। इसी प्रकार देर तक छत की ओर निहारते हुए अचेत की तरह पड़े रहे। नींद का झोंका-सा लगा। प्रायद नींद आने वाली है, ऐसा सोच-

कर सिरहाने रखा दीप गमजे से बुझा कर कुछ देर अंधकार में धूरते रहे। जहाँ दिन में ऐनक की महायता से कामचलाऊ देख पाते थे, आज वहीं गहन अंधकार में भी उन्हें अपना अतीत और बुद्धिया का कुछ अण पूर्व का वह रूप स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। सोच रहे थे—इतनी बड़ी हवेली आज कोई नहीं। पड़ोसी भी सो रहे हैं। रात-बिरात कुछ हो भी गया तो सहायता के लिये किसे पुकाहँगा। अधिक दिखाई भी नहीं पड़ता कि जाकर दरवाजा खटखटाऊँगा। फिर ऐसी स्थिति में सूने घर को छोड़कर जाना भी ठीक नहीं होता। इन्हीं तमाम शंकाओं-अपशंकाओं से घिरे न जाने नींद ने कब आ घेरा।

दो घंटे बाद नींद खुली तो हड़बड़ाकर उठे। टार्च टटोलकर जलाते हुए बुद्धिया के कमरे की ओर बढ़े। कमरे में घोर अँधेरा था। कमरे का दीप बुझ गया था। सलाई की तीलियों से बार-बार दीप जलाने का प्रयत्न व्यर्थ गया। तनिक भी तेल हो तब तो जले। वहाँ तो बत्ती तक जलकर बुझने की नौकर आयी थी। भगवानदास ने सोचा, अपने कमरे का दीप उठा लाऊँ। दीप ले आने-जाने के पूर्व उन्होंने बुद्धिया को एक नजर देख लेना उचित समझा। बुद्धिया के चेहरे पर टार्च का प्रकाश पड़ते ही भगवानदास की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। सँभलते-सँभलते धम्म से गिर पड़े। दीप सदा-सदा के लिए बुझ गया था। □

राहें; हम चलते हैं चाह पर

देवमुकुन्द निर्मल

यह उनमान “जहाँ चाह, वहाँ राह” का पर्याय-सा है जो उन्मुक्तता का द्योतक है, विचरण की सीमा का अतिक्रमण है। अर्थात् सरीह करने पर अपनी धरती अपना आसमान ही इसके कदम के आधार होंगे। खुलासा यह होगा कि व्यापक व्यक्तित्व की समर्थता में दुनिया के गोशे-गोशे को समाहित करने की भावना साकार हो।

पदों की अर्थपरक विशिष्टता पर गौर करने से ‘चाह’ और ‘राह’ क्रमशः लक्ष्य की उत्पत्ति और साधन मात्र हैं। ‘चाह’ अर्थात् इच्छा। अव्यक्त रूप से चाह की आजादी हर सख्ता को है, परंतु विचारों में मुखरित होने के उपरांत यदि अवैधानिक सावित हुई तो उसे भी पंगु बना दिया जाता है। यह इसलिए कि किसी भी मार्ग का निर्माण, उसका आगाज इसी विन्दु से होता है। जहाँ चाह की उत्पत्ति होती है, वहाँ राह की आवश्यकता महसूस होती है। राह के अभाव में चाह सक्रिय नहीं रह सकती। या यों कहें कि चाह की सक्रियता ही राह है।

जिनकी जुवानों पर ताला और

पेरों में जंजीरें हों उनकी दृष्टि में इसका कोई महत्व नहीं है! क्योंकि गुलाम मूक के साथ पंगु भी होता है, उनकी वैधानिकता दमन के भय से अंदर ही अंदर घुल-मिलकर पच जाती है। साहस हो तो सोना में सुगंध। जब हम कदीम युग के जोखिमों को जहनशीन करते हैं तो साहस के अलावा कोई मरहम नहीं मिल पाता। मेरा इतिहास का दम इसी के सहारे टिका है।

विज्ञान के भौतिक युग ने प्रत्येक दिशाओं में अपना कदम तेजी से बढ़ाया है। थल ही नहीं नभ-मंडल के विभिन्न ग्रह-उपग्रहों के अतिरिक्त अगाध समुद्र तल की यात्राएँ सहज हो गयी हैं। यह इच्छा का ही साकार रूप है। अतः इसका स्थान मनुष्य के विचारों में सर्वाधिक महत्व रखता है। सही अर्थ में इसी के अन्तर्गत आविष्कार तिरोहित भाव से रहता है। इसी चिन्तन-प्रक्रिया का परिणाम विद्युत-सभ्यता और कम्प्यूटर सभ्यता है।

अखिल विश्व के कोने-कोने में अपना पद-चिह्न स्थापित कर लेने से ही यात्राओं की पूर्णता नहीं है? जल

बल एवं नभ के अतिरिक्त एक ऐसी जगह है, जहाँ विज्ञान के हर एक उपकरण पहुँचने में असमर्थ है—वह है मनुष्य का हृदय स्थल। मनुष्य का हृदय एक ऐसी जगह है जिसकी राह नैतिकता में खुलती है। वहाँ जाने के लिये नैतिक सूत्रों का सहारा लेना पड़ता है। यह वैसी जगह है जहाँ परमाणु बम के विस्फोट नहीं होते, पैरों में चुभनेवाले काँटे नहीं उगते, अपहरण और बलात्कार नहीं होते, बल्कि प्रेम की अजस्त धारा वहाँ करती है। जहाँ अभय सफलता का दान मिला करता है। यहाँ आकर संपूर्ण विश्व एक सूत्र में वैঁধ जाता है। एकक्षत्र राज्य की स्थापना यहाँ होती है।

रास्ते रास्ते होते हैं—भलों के लिए भी बुरों के लिए भी। उनके लिए भी जिनकी सम्मान हिंसा, आगजनी, अराजकता एवं विध्वंस की ओर बढ़ रही है। वे भी आतंक के सहारे क्षण भर के लिये हृदय तक पहुँच जाते हैं। पर उनका वहाँ शासन नहीं होता, वरन् भय सालता है। स्थायित्व का अभाव तो रहता ही है, साथ ही साथ एक उत्पीड़न भी। महत्वाकांक्षाओं की इसे असफलता कहें या सामयिक यथार्थ के आग्रह पर प्रतिरोध दोनों स्थितियों में यह कोई खास सराहनीय कदम नहीं है। इससे शांति कराह उठती है, गांधी का सत्याग्रह रोपड़ता है। रास्ता

वह होना चाहिए। जिससे पहुँच कर पूर्णता को प्राप्त करें। जहाँ पूर्णता है वहाँ स्वार्थ नहीं रहता, स्वार्थ की जड़ तो अभावों में फैलती पनपती है जिसका शमन संतोष में होता है। ऐसी मान्यता हमारे महामुख्यों की रही है।

यह ठीक है कि आधुनिक चेतना दिक्ष्वर्मित हो रही है या हुई है। लेकिन इसकी विवशता भी है जो राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक आदि तत्त्वों में फैले घट्ट आचरण अराजकता एवं वैमनस्य की भावनाओं से है। इससे आदर्श गुण क्षीण होता जा रहा है जो नवचेतना को स्वीकार नहीं है। अतः हमारा सामूहिक कदमों पर विचार करना अपेक्षित होगा, जिनकी राह पतन की ओर ढलती जा रही है। रास्तों का चयन समुचित होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक राही का कल्याण निहित हो और दूसरे लोग भी आग्रह से स्वीकार करें तथा अपनी अभिलाषाओं में चार चाँद लगायें। उनके मार्ग के काँटे न बने और न बनायें। यह तभी सम्भव होगा जब राही को रास्ते की जानकारी हो कि अमुक रास्ता तवायफ के कोठे तक जाती है और अमुक रास्ता सेवाश्रम की ओर। इसी में राष्ट्र का कल्याण है और आत्मोत्थान भी।

दामोदर घाटी निगम : एक विहंगावलोकन

आर. ए. सिंह

यूं उत्पादित होती है ताप विद्युत

दक्षिण विहार एवं पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी एक विभीषिका के रूप में जानी जाती थी। इसे नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से ही दामोदर घाटी निगम का आविर्भाव हुआ। स्वतंत्र भारत की प्रगति की पहली किरण दामोदर घाटी निगम के रूप में प्रस्फुटित हुई। यहाँ से संपूर्ण भारत में औद्योगिक विकास एवं समृद्धि की लहरें प्रसारित हुईं। केन्द्र सरकार द्वारा १९ फरवरी १९४८ को पारित दामोदर घाटी निगम विधेयक के तहत ७ जुलाई १९४८ को हमारे प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने दामोदर घाटी निगम का शिलान्यास किया।

निगम का उद्देश्य—

- (१) वाढ़-नियंत्रण।
- (२) सिचाई एवं जल-आपूर्ति योजनाओं का सृजन एवं समृद्धि।
- (३) दामोदर घाटी क्षेत्र के भू-क्षरण योजनाएँ तथा उसका समुचित विकास।

(४) लोक-स्वास्थ्य एवं लोकहित परियोजनाओं का सृजन एवं विकास।

(५) औद्योगिक तथा आर्थिक परियोजनाओं का विकास। दामोदर घाटी निगम कुछ मामलों में हमारे देश में अद्वितीय रहा है—

- (१) भारत-सरकार द्वारा निर्मित प्रथम बहुउद्देशीय-परियोजना।
- (२) मैथन का भूमिगत पन-विजली केन्द्र।
- (३) बोकारो थर्मल का ताप विद्युत केन्द्र।

निगम के ताप विद्युत केन्द्र—

- (१) बोकारो ताप विद्युत केन्द्र “ए” == १५० मेगावाट।
- (२) बोकारो ताप विद्युत केन्द्र “बी” == ६३० मेगावाट।
- (३) चन्द्रपुरा ताप विद्युत केन्द्र == ७८० मेगावाट।
- (४) दुर्गापुर ताप विद्युत केन्द्र == ३५० मेगावाट।
- (५) मेजिया ताप विद्युत केन्द्र == ६३० मेगावाट, (निर्माणाधीन)।

पनविजली केन्द्र--

- (१) मैथन पनविजली केन्द्र = ६०
मेगावाट ।
- (२) पंचेत पनविजली केन्द्र = ४०
मेगावाट ।
- (३) तिलैया पनविजली केन्द्र = ०४
मेगावाट ।

गैस विद्युत केन्द्र—

- (१) मैथन गैस विद्युत केन्द्र = ९०
मेगावाट ।

ताप विद्युत उत्पादन के लिए तीन मुख्य पदार्थ काम में लाये जाते हैं—कोयला, तेल और पानी ।

कोयले को कोल-हैंडलिंग प्लांट में छोटे-छोटे टुकड़े में करके ताप-गृह में निर्मित डेहरियों में एकत्र कर लेते हैं, जहाँ उसे पावडर का रूप दें दिया जाता है । इसके बाद यांत्रिक संयंत्रों के माध्यम से यांत्रिक नियमों के तहत उसे इंधन भट्टी में भेज दिया जाता है और वहाँ पर वह प्रज्ज्वलित होने लगता है । प्रज्ज्वलन के लिए उसे डीजल की मदद लेनी पड़ती है । उसकी प्रज्ज्वलन-उष्मा से 'वायलर ट्यूब' का विशुद्ध पानी गर्म होकर भाप बनने लगता है । वही भाप गर्म होने की विभिन्न श्रेणियों को पार करते हुए जब एक निश्चित तापमान प्राप्त कर लेती है, तब उसे एक विशेष दबाव पर 'टरबाइन' की पत्तियों पर प्रेरित किया जाता है । टरबाइन की भिन्न-भिन्न शृंखलाओं से गुजरते हुए

वह यांत्रिक ऊर्जा का रूप धारण कर लेती है, जिसे जेनरेटर की सहायता से विद्युतीय ऊर्जा में रूपान्तरित करके लोककल्यार्थ वितरित किया जाता है ।

लघुकथा

अंदरूनी मामला

□ अंकुश्री

घर में हो रहे रोज की मारपीट, लत्तम-जुत्तम, हो-हल्ला के कारण उसके पड़ोसी परेशान थे, उसके आतंक से परेशान होकर घर के सदस्य पड़ोसियों की शरण में चले जाते थे, उसके आततायीपूर्ण व्यवहार की पड़ोसी घरों में आये दिन चर्चा होती रहती थी ।

उसके घर के सदस्यों को शरण देना पड़ोसियों की चिन्ता या परेशानी का विषय नहीं था । पड़ोसी उसके दुव्यवहार और अत्याचार के कारण ही चिंतित और परेशान थे ।

पड़ोस के हर घर में उसकी शिकायत होती रहती थी । पता चला तो उसे यह बहुत बुरा लगा, उसने पड़ोसियों के व्यवहार पर टिप्पणी की, "किसी को मेरे घर-परिवार के बारे में सोचने की जरूरत नहीं है, वे खामोश रहें; यह मेरा अंदरूनी मामला है ।"

उसने परिवार के सदस्यों पर अत्याचार और जोर कर दिया ।

क्या हनुमान पूँछवाले वन्दर थे ?

डॉ० श्रद्धानन्द पाण्डेय

विश्व की विभिन्न जातियाँ अपने को कुछ विभिन्न पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, जन्तुओं या पदार्थों से उत्पन्न अथवा उनसे किसी प्रकार की सगो-त्रीय निकटता मानती रही हैं। इनमें से कुछ जातियों के लोग तो अपने नाम के पूर्व अथवा पश्चात्, उपसर्ग या प्रत्यय के समान पदवी के रूप में इनका प्रयोग भी करते रहे हैं। यह प्रवृत्ति आदिवासी या वनवासी समुदायों में अधिक है। वर्तमान काल में हमें लकड़ा (एक प्रकार का छोटा वाघ), क्का (कछुआ), खाखा (कौआ), मिज (मछली), नाग (साँप), तिगा (वन्दर), धान आदि पदवी वाले नाम बहुतायत से मिल जाते हैं। गैर-आदिवासियों में सिंह (धेर) पदवी तो बहुत ही प्रचलित है जिसे प्रायः अत्रिय (राज-पूत), अहीर, कुर्मी, कोइरी आदि जाति के लोग अपने नामों में जोड़कर प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त हाथी पदवी के लोग भी हैं। श्री जयमुखलाल हाथी किसी समय राज्य-पाल थे। गिरि (पहाड़) पदवी वाले तो हमारे देश के महामहिम

राष्ट्रपति (श्री वराह वेंकट गिरि) रह चुके हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में हम देखें तथा सोचें तो हमें यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि हनुमानजी (वन्दर), जामवन्त (भालू), मैनाक (पहाड़), जटायु (गृद्ध), काकभुशुण्डी (कौआ) आदि पशु-पक्षी या मनुष्येतर प्राणी न होकर इन नामधारी जातियों के सदस्य ये। जैसे श्री भीष्म नारायण सिंह राज्यपाल हैं। यदि उन्हें कोई पंजा-पूँछ सहित वनराज समझे तो यह बड़ी भारी भूल होगी। उसी प्रकार जटायु को गृद्ध, हनुमानजी को वन्दर, जामवन्त को भालू तथा काक-भुशुण्डी को कौआ समझना भूल है। इसी तरह हम मच्छ, कच्छ, वराह आदि अवतारों को भी इन नामधारी जातियों में उत्पन्न महापुरुष मान सकते हैं। माँ पार्वती भी पर्वत पदवी वाले पिता की पुत्री हैं।

मेरे एक मित्र श्री राम प्रवेश सिंह एक दिन मेरे यहाँ आये थे। उन्होंने मेरे कनिष्ठ पुत्र गोपेश (चालू नाम गोलू) को निकट बुलाने की चेष्टा की। उनके जाने के पश्चात्

गोलू ने पूछा—ऊ के रहल हा ? मैंने उत्तर दिया—ऊ सिंह चाचा नू हवे । जारवर्षीय गोलू ने प्रतिवाद किया— ऊ त सिंह ना रहले हा, ऊ त आदमी रहले हा । गोलू ने टीवी तथा अपनी कसग वाली पुस्तक में सिंह देखा है । वह सिंह चाचा मानने को तैयार नहीं है, वह उन्हें आदमी ही मान रहा है, परन्तु जब वह सुनते-सुनते अभ्यस्त हो जायेगा तो अपने अग्रजों के समान उन्हें सिंह चाचा तुरन्त मान लेगा । सुनते-सुनते उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा संस्कारजन्य विश्वास में परिवर्तित हो जायेगी । इसी प्रकार जन्म से ही सुनते-सुनते पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक परिवेश के कारण हमारा अधिकांश समाज हनुमानजी को पूँछयुक्त सचमुच का बन्दर मानने लगा है । पता नहीं, हनुमानजी को मन्दिरों में अपनी पूँछयुक्त बन्दरवाली प्रतिमाओं को देखकर कैसा अनुभव होता होगा !

वाल्मीकीय रामायण में जब सबसे पहले श्रीराम-लक्ष्मण की भेंट हनुमानजी से होती है, उसके पश्चात् श्रीराम अपने अनुज से कहते हैं—
 नानृग्वेद विनीतस्य, नायजुर्वेदधारिणः ।
 ना सामवेद विदुपः, शक्यमेव विभा-
 पितुम् ॥
 नूनं व्याकरणं कृत्स्तमनेन वहुधा श्रुतम् ।
 वहु व्यवहारतानेन न किञ्चिदप-
 शब्दितम् ॥
 यात्रा के लिए (४/३/२८-२९)

जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद को धारण नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह व्यक्ति इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता । निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण को कई बार सुना है क्योंकि वहुत सी बातें बोलने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्ध शब्द नहीं निकला ।

क्या ऐसा विद्वान् पूँछवाला बन्दर नामधारी पशु हो सकता है !

इस प्रसंग में यह जानकारी बड़ी ही दिलचस्प है कि वर्तमान काल में जिस प्रकार अत्रिय अपनी पदवी प्रायः सिंह लिखते हैं, वैसे ही भगवान् राम के वंश में वहुतों के नाम के साथ अश्व (घोड़ा) शब्द का प्रयोग है । श्रीमद्भागवत महापुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण आदि में सूर्यवंश की वंशावली में निम्न प्रकार के नाम मिलते हैं—युवनाश्व (युवा घोड़ा), वृहदश्व (बड़ा घोड़ा), कुवलयाश्व (ऊँचा घोड़ा), दृढ़ाश्व (शक्तिशाली घोड़ा), हर्यश्व (हरि का घोड़ा), अमिताश्व (भोटा घोड़ा), कृशाश्व (दुबला घोड़ा), पृष्ठदश्व (चौड़ी पीठ वाला घोड़ा), प्रतीकाश्व (चिह्न वाला घोड़ा), संहताश्व (सुडौल घोड़ा), सहस्राश्व (हजार के समतुल्य घोड़ा), रणाश्व (युद्ध का घोड़ा), रोहिताश्व (लोहित अर्थात् लाल रंग का घोड़ा) । यही नहीं, कुछ नामों में तो घोड़े के साथ गाड़ी

(रथ) भी है, यथा—सत्यरथ, भगीरथ, सुरथ। स्पष्ट ही ये सूर्यवंशी नरेश घोड़ा न होकर मनुष्य ही थे।

यदि हम इस दृष्टिकोण से विचार करें तो विभिन्न पुराणों तथा रामायण-महाभारत आदि ग्रन्थों में मानवोचित कार्य तथा वार्तालाप करने वाले पशुओं-पक्षियों आदि की अवधारणा तर्कसंगत ढंग से कर सकते हैं। □

लघुकथा

क्या हो गया है जमाने को ?

जाड़े की सुवह, कहीं-कहीं हल्का गहरा कुहासा। ऐसे में सुधा कालेज की ओर तेजी में बढ़ रही है और सोच रही है—आज कालेज में ऐसा भाषण देना है कि दहेज-प्रथा तो बन्द ही हो जाय, साथ ही मनीष भी उस भाषण से प्रभावित होकर ।

मगर यह क्या ! बगल से गुजर रहे रामकिसुन बाबू का पैर फिसलकर सुधा के पैर से टकरा जाता है। और बस; सोलह वर्ष की आवाज पचहत्तर वर्ष की आवाज से तेज हो जाती है—“इडिएट, नॉनसेंस, अंधा का ही रोल करना था तो क्यों नहीं अपनी आँखों में कील डालकर यूरदास बन गया?” रामकिसुन बाबू माफी माँगते हैं, गिड़गिड़ते, हैं, बहुत

शुरुआत

□ राकेश कुमार

हम, रक्षितम क्रांति पर
विश्वास नहीं करते
क्योंकि
साँझ का सूरज ही
रक्षितम होता है।
पर, एक अच्छी शुरुआत के लिए
अरुणिम आभा भी तो
प्रेरक हो सकती है हमारी

□ रामेन्द्र मिश्र

शर्मिन्दा हैं; मगर सुधा है कि जैसे उस पर कोई असर ही नहीं।”

संयोग यह कि कालेज से लौटते समय सुधा से एक और व्यक्ति के पैर टकरा जाते हैं, मगर इस बार सुधा की आवाज बदल जाती है—“हाय मनीष ! इसमें साँरी कहने की क्या बात है ? यूँ पैर कुचल जाने से क्या हुआ ! प्यार के लिए तो प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए कुर्बान तक हो जाती है। तेरे प्यार में तो कितने दिनों से मैं ।”

एक और संयोग कि रामकिसुन बाबू उसी रास्ते से लौट रहे होते हैं। वे इस परिचित आवाज पर गौर करते हैं और अपने पारंपरिक सोच के कारण परेशान हो जाते हैं—‘क्या हो गया है जमाने को ?’

ईर्प्या

सत्येन्द्र दीक्षित 'त्रासदायी'

भयायक ढंग से मुड़ती हुई कार गेट से होती हुई लान में हरी धास को निर्दयता से कुचलकर गैरिज की गोद में समा गयी।

वह डगमगाता हुआ कार से निकला। अभी कुछ कदम ही चला था कि कमरे से आते तीव्र स्वर उसके कानों से टकराये। वह वहीं रुक गया। सुनने की कोशिश करने लगा।

"शर्मा का अभी से कलब जाना और इतना खर्च ठीक नहीं है।" मर्दाना स्वर उभरा।

"अभी बच्चा ही तो है। सब समझ जाएगा।" यह जनाना स्वर था।

"बच्चा है। एक माह का खर्च ८००१।" उसने प्रश्नवाचक निगाह से देखा।

"अरे! एक ही तो लड़का है।"

"इसका मतलब यह नहीं कि उसे प्यार में विगाड़ दो।"

"मैं विगाड़ रही हूँ? या तुम उसे उपेक्षा बाँट रहे हो पैसे की पैसे की खातिर?"

"नहीं—उसे प्रत्येक खर्च सोच-समझकर करना चाहिए।"

"तुम उससे ईर्प्या रखते हो। और……!"

एक और मुसीबत

□ कुमार दिलीप सिंह

यादों के घेरे में

मन

जब आकाश में चील की तरह उड़ने निकल जाता है

तब

पहाड़ी से निकलती हुई नदी भी आँख के कोरों से बहती हुई आँसुओं की धार जैसी नजर आती है

और धरती

डायरी के पन्नों के बीच किसी सूखे हुए फूल की पंखुड़ियों के समान उदास और बेसुध दिखाई देतो है उलझनों के बीच जब शराब पूरी तरह चढ़ जाती है एक और मुसीबत वढ़ जाती है तुम्हें भुलाने की।



अभी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि दरवाजे पर अट्टहास उभरा। दोनों चौंककर बाहर आये। विस्मय से अपने लड़के को लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की तरफ जाते देखते रहे। कमरे में प्रवेश करने से पूर्व दरवाजे पर लिख गया—माँ हो तो ऐसी।



सत्त्वासेषु शृणु इष्टि लाभा न भावते

अनिवार्य है भारतीय भावबोध आज की कविता के लिए

डॉ० नन्दकिशोर तिवारी

यदि साहित्य जीवन की
आलोचना मात्र नहीं जीवन का
अनुभव भी है तो इस दृष्टि से आज
के काव्य में उसका जो रूप प्रकट
होकर आ रहा है वह भारतीय
साहित्य के राजपथ का अन्तर्वाही
नहीं कहा जा सकता। हमारे साहित्य
की अन्तर्धारा कहीं कामपरक है और
कहीं मोक्षपरक। ये दोनों धर्म की
कूल्या से सिक्त हैं। हमारे ऊपर
किसी प्रकार का उन्माद चढ़ता नहीं।
आधुनिक साहित्य में अन्य जातियों के
संपर्क से कुछ उन्माद आया है, वह
आकर्षक भी है, किंतु वह हमारे
संवेदनशील मन पर एक प्रतिक्रिया
के रूप में दिखाई पड़ी जाता है।
अन्तर से सदा हम रसवादी रहे हैं,
यही भारतीय शब्द का भावबोधवाद
है। यह भावबोधवाद प्रखर बौद्धिक
रूप में प्रकट होकर भी धर्म रस की
धारा से पृथक् नहीं, क्योंकि भारतीय
संस्कृति के प्रति आस्था की शृंखला
कहीं टूटती नहीं दिखाई पड़ती।

यद्यपि, यह भी सही है कि
उग्रभग एक सहस्र वर्षों से

हमारी संस्कृति भी चोट के साते-
खाते धाई बनी हुई है। इस पर
आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के
आक्रमण हुए, होते रहे। इससे कवि
कभी बाह्य दृष्टि से और कभी आत्म-
केन्द्रित होकर रचना में प्रवृत्त होते
गए। लेकिन वे किसी कारण भयभीत
नहीं हुए। ईश्वर को साक्षी बनाकर
अपने भीतरी भय पर विजय प्राप्त
करते गए। रचना में शिथिलता नहीं
आई। बड़े नाम उन्हें भीत नहीं कर
सके। मन और शरीर से ग्लान-
म्लाल रहने पर भी उनके भीतर का
सर्जक पूर्णतः जागरूक बना रहा।
उसने सत्य को स्वीकार किया, अपनी
हार को भी जीत के पर्व रूप में
मनाया, सामने रखा। अपनी
कमजोरियों को इसलिए लिखा कि
उन पर विजय प्राप्त कर ली हो।
उसका अदम्य साहस बड़े-बड़े
आक्रमणकारियों के दिल दहलाने वाले
करतूतों के समक्ष भी उससे बढ़कर
प्रकट हुआ। उसने अपने भीतर के
उच्च उदात्त को ही सामने रखा,
उसको और मनोहरता का बाना
पहनाया।

लेकिन आज जैसा समाज है, रचनाकार जनसाधारण के वास्तविक सुख-दुःखों से हटकर स्वनिमित वंधनों से जकड़ा हुआ दिखाई देता है। उसकी कुछ शब्दावलियाँ हैं जिनके प्रयोग से कविता समालोचना स्वयं लिख जाती है। यहाँ वैयक्तिक आचरण के संशुद्ध नहीं होने के कारण टाइप रचना की पराधीनता में वह बँधता गया है। जैसे राजनीति कुछ-कुछ मुद्दों को उछालते, आश्वासन की एक ही दवा को प्रयुक्त करती हुई अपने तूणीर के सारे तीर खर्च कर रिक्त हो गई है उसी प्रकार साहित्यकार का जीवन, रचना से व्यतिरिक्त होकर एक अनुपम विरोधाभास उत्पन्न करने लगा है। संस्कृत साहित्य में कवियों, नाटककारों में विविध वंधनों के भीतर एक अपूर्ण संयम का अभ्यास प्रकट होता है, अपने आपको मिटाना वह जानता है। वह अपने से सर्वसाधारण का प्रतिनिधि बनाकर प्रकट होता है। संसृति की विषमता के मध्य एक शाश्वत मंगल के लोकधुन पर उसकी सारी कविताओं का प्रणयन होता है। एक ओर संसार का निविड़ वंधन और दूसरी ओर आत्मा की वंधनहीन व्यापकता। उन दोनों का सामंजस्य उस कविता को अपूर्व मधुरिमा से भंडित करता है। कितनी श्रद्धा और निष्ठा का ज्वार है उन कविताओं में।

लगता है, मृष्टि भर तक के लिए अमृत कोश भरा रहेगा।

यह मानवीय बोध है जो नित्य नये फलक पर प्रकट होकर हमें ऊर्जा देता रहेगा। हमारी संवेदना जब कहीं भोथर होने लगे तो हम भारतीय भावबोध को, जहाँ निष्ठा का महार्णव विद्यमान है, जाग्रत कर प्रशांत उदात्त मानव गुणों को सशक्त रूप प्रदान कर अपनी सक्षमताका प्रमाण दे सकते हैं। विजयगीत लिखने के लिए अपनी हार का राग अलापना क्या बुरा है? □

गजल

□ डॉ. आसिफ रोहतासवी

खत की बातों से लगता है काफिर कितना बदला होगा।
किस गुलशन का गुल है जाने किस जालिम ने मसला होगा।

चलिए हम वरबाद हुए गर उनका तो जी बहला होगा।

होगा जब भी जिक्रे कातिल नाम तुम्हारा पहला होगा।

आसिफ उसकी बात न पूछो आशिक कोई पगला होगा।

□

पर्यावरण-प्रदूषण एवं वैचारिक क्रांति

जी. एन. राय

प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन ही प्रदूषण है। प्राकृतिक संसाधन हैं—जल, धूल, हवा, बनस्पति एवं प्राणी।

मनुष्य भगवान का ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र है, वही इस धरती पर ऐसा प्राणी है जो सभी संसाधनों का उपभोग करता है। अतः उसी की क्रियाशीलता पर प्राकृतिक संसाधनों का संतुलन एवं सदुपयोग निर्भर है। सभी उत्पाद मनुष्य से हैं और वे पुनः मनुष्य को ही लौटते हैं। थोड़ा आश्चर्य होता है जब मनुष्य-मनुष्य में टकराव होता है। कारण है—जमात की प्रवृत्ति। जमात की प्रवृत्ति प्रदूषण का महान् कारण है।

इस ब्रह्मांड में उर्जा की मात्रा निश्चित है एवं उसका धड़ल्ले से तोड़ संतुलन एवं प्रदूषण का एकमात्र कारण है। उसका तोड़ एवं स्थान्तर सदाचार के साथ करना होगा।

याद रहे, पर्यावरण-प्रदूषण की जड़ है वैचारिक प्रदूषण। अतः पर्यावरण-प्रदूषण समाप्त करने के

लिए वैचारिक क्रांति ही एकमात्र ब्रह्मास्त्र है।

वैचारिक क्रांति मंभव है—आहार-नियंत्रण, अनुशासन शिक्षा, श्रम एवं शुद्ध चरित्र-चिन्तन से। स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिकागो के प्रवचन में कहा था—पिछले चौबीस घंटों में भोजन के रूप में जो कुछ भी आपने ग्रहण किया है वह मानवीय व्यवहार बनकर आपके व्यक्तित्व से परिलक्षित होगा।

वैचारिक क्रांति के लिए आहार, अनुशासन-शिक्षा, श्रम एवं शुद्ध चरित्र-चित्तन पैदा करना होगा।

जब सद्विचार होंगे तो जनसंख्या स्वतः नियंत्रित हो जाएगी। वैज्ञानिक इंजीनियर, डॉक्टर, वाहन चालक एवं नियंत्रक धुआँ आदि तमान गंदी चीजें नियोजित ढंग से अच्छी चीजों में बदल पायेंगे।

विज्ञान वरदान होगा, अभिशाप नहीं। अयनामाइट पहाड़ की चट्टान उड़ाकर बड़े-बड़े संस्थान, बाँध, सड़क एवं भव्य भवन बनाने में होगा।

गंदी नाली के कचड़े का प्रयोग विजली बनाने में होगा।

मध्यता एवं संस्कृति की दोड़ में ज्यादा फासला नहीं होगा।

इस प्रकार जब वैचारिक क्रान्ति होगी तो जनसंख्या स्वतः नियंत्रित होगी एवं समाज में प्यार और सहकार फैलेगा। लोग स्वतः पेड़-पीधों और जीव-जंतु की रक्षा करने लगेंगे।

ननीषियों का मत है कि जब मनुष्य ने श्रद्धा व विवेक की अवमानना कर बुद्धिवाद का अधिक सहारा लिया तो इस ब्रह्मांड में समस्याएँ खड़ी हो गयीं। बुद्धि ने ही विज्ञान के अन्तराल को खोजा, नटोला एवं फिर उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गयी। श्रद्धा एवं विवेक को कोने में कर दिया।

प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन इसी की परिणति है। औद्योगीकरण का अविवेकपूर्ण विस्तार विज्ञान और बुद्धि की कमाई है। पर्यावरण को प्रदूषण से भर देने का थ्रेय उमी को है।

विज्ञान एवं बुद्धिवाद ने मनुष्य को बैलगाड़ी से अपोलो के चन्द्रविहार, अग्नि, पृथ्वी, नाग के सफल परीक्षण तक पहुँचाया। टेरीलीन, टेरीकाटन, तथा अन्य रामायनिक, वस्त्रों के साथ पसमीना का भी प्रयोग कराया। टेलेक्स, टेलिप्रिटर,

एसटीडी, छापाखाना, टेलेक्स, टीवी आदि की खोज कर दी।

किंतु पर्यावरण-प्रदूषण ने मनुष्य के ब्रह्मांड में यों वैचारिक प्रदूषण पैदा किया कि रास्ते में, ट्रेनों में वसों में वात-वात में झगड़ा, मार-पीट, बन्दूक चलना, वम फटना आदि वातें अब आम हो गयी हैं। वैचारिक प्रदूषण के कारण विश्व के सर्वोत्कृष्ट राष्ट्र अमेरिका के अस्पताल में विक्षिप्त रोगियों की संख्या महत्तम है, जिसकी कोई दवा नहीं है। उन्हें सलाह दी जाती है कि भारत एवं हिमालय के उत्तराखण्ड में जाकर एक महीने रहें, ठीक हो जाएँगे।

धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण, श्रम, विचारणा एवं व्यक्तित्व के अनुशासित प्रयोग से वैचारिक क्रान्ति लानी होगी अन्यथा अगले दस साल में पर्यावरण-प्रदूषण इतना बढ़ जायेगा कि बच्चे जन्म लेने के ८-१० घंटे के अन्दर मर जाएँगे। वैज्ञानिकों के साथ-साथ अन्य लोग अपने नवजात शिशु का मुँह ८-१० घंटे से ज्यादा नहीं देख पायेंगे।

वर्तमान अन्वेषण कहता है कि जब ९५% लोगों में प्यार एवं सहकार के साथ सहदयता आएगी तब वैचारिक क्रान्ति होगी।

क्रान्ति हरदम वैयक्तिक होती है कभी भी सामूहिक नहीं होती।

उदाहरण हैं—गौतम बुद्ध, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द

एवं वैचारिक क्रान्ति के अग्रदूत पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, जिनकी स्मृति में भारत के राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा एवं मुख्य न्यायाधीश श्री रंगनाथ मिश्र ने डाक टिकट जारी कर आचार्य जी को व्यक्ति नहीं शक्ति की संज्ञा दी एवं दुनिया के छह अरब मनुष्यों के लिए नयी दिशा देनेवाला अग्रदूत बताया ।

विश्व के महान् भविष्यवेत्ता नेस्ट्राडामस की सत्य भविष्यवाणियों

में एक यह भी है कि जिस देश के तीन तरफ समुद्र होगा, ब्रह्मस्पति वार जहाँ पवित्र दिन माना जाता होगा, वहाँ विचार क्रान्ति जैसी चीज पैदा होगी और और वही देश सन् २००० के बाद विश्व का पथ-प्रदर्शन करेगा ।

यह सत्य है । वैचारिक क्रान्ति ८ वर्षों के अन्दर आएगी और पर्यावरण-प्रदूषण खत्म होगा पूरा विश्वास है । □

नवगीत

□ विजय प्रकाश

खुश नहीं होने की इसमें बात कोई, मन,
यह निमंत्रण नेह का हो चाल, है मुमकिन ।
जग जुआरी

देखता है

सिर्फ अपने दाँव,
निष्कपट सद्भावना के
टिक न पाते पाँव,
साँप छिपने लगे हैं अब आस्तीनों में
फूँक कर पीना पड़ेगा छाछ को भी मन ।

युग बदलता

टूटता है

आपसी विश्वास,
वंचनाओं के धुएँ से
भर रहा आकाश;
कौन किसको कब छलेगा, क्या पता, भाई !
रात-युवती-आत्मघाती, चरमपंथी दिन ।

परिचर्चा

चर्चा शांति की

हमारे यहाँ ईश्वर के 'शान्त स्वरूप' (शान्ताकारं भुजगशयनं ...) की कल्पना की गयी है, और 'अशांतस्य कुतः सुखम्' कहकर अशांति को दुःख का कारण भी माना गया है। जायद इसीलिए, मांगलिक कृत्यों में 'स्वस्त्ययन' के अंत में 'ॐ शांतिः शांतिः शांतिः' कहना जरूरी हो जाता है। स्पष्ट है कि सुखमय जीवन के लिए 'शांति' की प्राप्ति आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझी गयी है।

और आज के संदर्भ में जब ब्रह्मांड प्राकृतिक असंतुलन के खतरे से गुजर रहा है और संपूर्ण विश्व मानवीय गंध को तिलांजलि देकर रसहीन यांत्रिक व्यस्तता और तज्जन्य मानसिक तनाव के व्यापक क्षेत्र तैयार कर चुका है; तब यह प्रश्न अधिक प्रासंगिक हो जाता है कि शांति कैसे मिलेगी। और फिर, इमके बाद व्यतिक्रम में ऋषि शुरू होता है सवालों का—शांति है क्या? क्यों चाहिए शांति?

जांति की प्राप्ति हर युग के जीव मात्र की लक्ष्य रही है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में जान्ति-प्राप्ति की ही अपनी कामना को संतुष्ट करने के लिए प्रयासरत है। आश्चर्य की बात यह है कि अगणित व्यक्तियों की लक्ष्य यह 'शांति' अपने अगणित रूपों में हमारे सामने आती है। विद्वद्वजन अलग-अलग ढंग से इसका स्वरूप—निर्देश करते हैं और इसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं। इस प्रकार यह प्रश्न आज भी अपने समाधान की अपेक्षा रखता है। मैंने इस शांति-चर्चा में अध्यात्म-विशेषज्ञों को नहीं, बल्कि जनसामान्य में से ही कुछ बुद्धजीवियों को सम्मिलित किया है। प्रस्तुत है—उनके विचारों के मुख्य अंश।

शांति की ओर उन्मुखता हो शांति की प्राप्ति है

श्री राजेन्द्र वहादुर सिह (प्राचार्य) मानसिक शांति को ही शांति मानकर चलते हैं। इनका कहना है कि पड़ोसी के घर में रेडियो

या टी. बी. पर कोई बढ़िया गाना बजे और हम यदि गम के सागर में डूबे हों तो उससे हमें शांति की बजाय अशांति ही महसूस होगी। ये शांति को सापेक्ष मानते हैं। उदाहरण के लिए; कोई नया व्यक्ति स्टेशन के निकट आवास होने की स्थिति में रेलगाड़ियों की आवाज मुनकर अशांत हो उठता है, लेकिन बहुत पहले से रह रहे उसके पड़ोसियों के लिए वही आवाज किसी भी स्तर पर उन्हें अशांति नहीं देती। श्री सिंह 'अपने अहंकार के कारण तथ्य की अस्वीकृति' को ही अशांति का मुख्य कारण बतलाते हैं और उपाय-निर्देश करते हुए कहते हैं कि शांति के लिए यदि अत्यधिक आवश्यक कोई तकनीक है, तो वह है—सामंजस्य—वर्ग-वर्ग का सामंजस्य, व्यक्ति और समाज का सामंजस्य। यह सामंजस्य सिर्फ समाज ही के लिए आवश्यक नहीं है, प्रकृति भी इसकी अपेक्षा रखती है।

'पूर्ण शांति... मतलब हम स्थिर हो नये, हम मर गये' कहते हुए श्री निहृ इन्द्रियातीत शान्ति की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। सांसारिक शांति में विश्वास रखते हुए ये कहते हैं कि शांति, शांति की ओर उन्मुख हो जाने में है। हम शांति की ओर उन्मुख हो गये, इनका मीधा अर्थ है कि हम शांति को जीने लगे।

शांति एक नाजुक संतुलन है

श्री सत्यदेव (प्राचार्य) कहते हैं कि 'शांति' एक आत्मस्थ अथवा स्वस्थ होने की स्थिति है। 'शान्ति' घटनाओं के न होने या शोर-घरावे के अभाव का नाम नहीं है, बल्कि शान्ति तो वह नाजुक संतुलन है, जिसे हम सायास बनाये रख सकते हैं, भले ही परमाणु-युद्ध हमारे चारों ओर छिड़ गया हो। जब घटनाएँ कुछ ऐसे मोड़ लेने लगती हैं, जिन्हें हम नहीं चाहते, तब अशांति पैदा होती है। इसलिए, शांतिकामी व्यक्ति को या तो परिस्थितियों से निःसंग हो जाना चाहिए अथवा अपने को इतना समर्थ बना लेना चाहिए कि सभी स्थितियों में समंजन किया जा सके। इस तरह शांति हमें कहीं बाहर से नहीं, बल्कि अपने भीतर से और अपने व्यवहार को संयत और समंजित बनाते हुए प्राप्त हो सकती है।

भटकाव को समाप्त करना ही शांति का लक्ष्य है

श्री अशोक कुमार सिंह (हिन्दी अध्यापक, शांति का अर्थ बतलाते हैं—निरासक भाव ने तमाम सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए परमात्मा के चरणों में पूर्ण समर्पण। जिस क्षण जीवात्मा सांसारिक जीवन के तमाम पक्षों को दरकिनार कर परमात्मा की सत्ता में स्वयं को अन्त-लिप्स कर देता है, वह महाममुद्र की

तकहटी के समान शांत हो जाता है। फिर उसे कोई चिता नहीं कि उसके हृदय से कोई मोती निकाल रहा है या गोप। लहरें आती हैं, जाती हैं; वह महाशून्य में खोया हुआ रहता है, समाधिस्थ हो जाता है; उसे इन हलचलों का पता तक नहीं चलता।

शांति के लिए कहीं जाने की कोई आवश्यकता नहीं। भटकाव को नमाप करना ही तो शांति का लक्ष्य है। सिर्फ अन्तर्भविं की परिष्कृति की जरूरत है, एक अन्तर्यात्रा की जरूरत है। हमें संसार में एक मशीनी जिंदगी जीनी है। मशीन का कार्य चालक की आज्ञा का अनुसरण करना है; उसका अपना कोई सुख-दुःख नहीं होता। हमारा चालक भी ऊपर बैठा है। हमें अपना कर्म करते रहना है इस भाव से कि—

मेरा मुझमें कुछ नहीं,
जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुमको सौंपिया,
क्या लागे हैं मोर।

शांति तभी कारगर होगी जब हम सर्वहारा के जीवन को शोषणमुक्त कर पाएँगे

श्री मुरेश कुमार पांडेय (हिन्दी अध्यापक) की मान्यता है कि 'शांति' जिन अर्थों में वैदिक काल, बौद्ध और मुगल काल के भारतीय समाज में स्वीकृत थी; उन्हीं अर्थों में इन दिनों

भी 'शान्ति' शब्द का प्रयोग न तो समीक्षीन होगा और न ही आज के आदमी का चिन्तन। अनहं जीवन-संघर्ष के क्रम में थोड़े-से शिशाम के बाद फिर जुझारु जीवन-संघर्ष की चेतना को बनाये रखने का नाम शांति है। यही तथाकथित शांति हमें चाहिए। लेकिन, इस चिन्तन से अलग हटकर जब हम आध्यात्मिक शांति की तरफ उन्मुख होंगे तो निश्चय ही हम आदमी होने की अनिवार्यता को खो देंगे, क्योंकि संघर्ष और द्वन्द्व के साथ जुड़े व्यक्ति का नाम आदमी है।

हमारे जीवन-संघर्ष के उस संघर्ष के गुणनफलस्वरूप मिलनेवाली शांति तभी कारगर होगी, जब हम सर्वहारा के जीवन को शोषणमुक्त कर पाएँगे। इसीलिए, जब तक लोग जीवन-संघर्ष को जीवन का हिस्सा नहीं बनाएँगे और सर्वहारा वर्ग को शोषणमुक्त नहीं करेंगे, तब तक न तो सामाजिक, न तो आर्थिक और न ही अभाव में शांति (चाहे भौतिक या आध्यात्मिक आनंद) की परिकल्पना बेमानी और हास्यास्पद है।

शांति मस्तिष्क का एक ऋम विन्दु है

नवोदित साहित्यकार श्रीमती गीमा मिश्र बताती हैं कि शान्तिमय अर्थात् आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के लिए 'संतोष' धन की

अनिवार्य आवश्यकता है। संतोष के आसन पर अहंकार या इच्छाएँ कभी प्रभाव नहीं जमा सकतीं। इसे स्पष्ट करते हुए ये बतलाती हैं कि मनुष्य का झूठा अहं और उसकी अनगिनत इच्छाएँ उसे शांति कदापि नहीं दे सकतीं। जब हमारी क्रमयः बढ़ती इच्छाएँ कभी-कभार दमित हो जाती हैं तो हमारे अन्दर असंतुष्टि का भाव जगता है, जिसके कारण हमें मिलती है—वेचैनी, तनाव और निराशा। और, ये सभी मिलकर हमसे हमारी शांति को छीन लेते हैं। शांति मंदिर-मंदिर और जंगल-जंगल धूमने से नहीं मिलने वाली। शांति का स्वरूप—निर्देश करते हुए श्रीमती मिश्र बतलाती हैं कि शांति क्षितिज की भाँति ही हमारे चेतन मस्तिष्क का एक भ्रमविन्दु है। इसके लिए ज्यों-ज्यों हाथ बढ़ाएँगे, यह बिन्दु आगे ही बढ़ता जाएगा।

शांति की खोज में तत्पर होना श्रेयष्ठकर

श्री सुनील कुमार तिवारी (छात्र) का मानना है कि अविचल मानसिक शक्ति और आनंद की पूर्णता का ही नाम शांति है। मन की दुर्बलता अशांति की जड़ है। जीवन के नानाविध व्यापारों में उतार-चढ़ाव की स्थिति हर पल आती है। वे कहते हैं कि निष्काम जीवन में शांति का श्रेय निश्चितता

की प्राप्ति कराता है। निश्चितता में ही शांति का आनंदलाभ है।

अपने पर नियंत्रण करने की शक्ति को जानना शांति का माध्यन है। मुझाप चन्द्र बोस ने कहा था कि अपने में ही चेतना को केन्द्रित रखने और आत्मविश्वास के न्योत में जीवन नैया को बहाने में परम शांति है। आत्मविश्वास जीवन का रचनात्मक पथ है, जहां शांति की निर्मल मंदाकिनी प्रवाहित होती है। शांति के लिए सचेष्ट होना होगा।

मानव मन एक सहज स्थिति में नहीं रह सकता, हमेशा चंचलता की स्थिति विद्यमान रहती है। शांति हार्दिक स्थिति को रूपायित करती है। मैं महात्मा गाँधी के इस कथन से सहमत हूँ कि त्याग और उद्यम-विहीन शांति तो मृत्यु है। शब जैसी शांति से क्या लाभ? मैं उस तरह की शांति नहीं चाहता जो कब्रों में मिलती है। मैं उस तरह की शांति चाहता हूँ जिसका निवास मनुष्य के हृदय में है।

अतः सहदय होकर शांति की खोज में तत्पर होना ही श्रेयष्ठकर है, क्योंकि शांति जीवन-मूरि है, यही वह तत्त्व है, जिसकी प्राप्ति जीवन को तीर्थ वना देती है, और आनंदस्नात् प्रेम की निर्झरणी को प्रवाहित करती है। (आयोजन : रामिवि)

प्रस्तुति □ सीमा मिश्र

फलित ज्योतिष का प्रासंगिक विवेचन

फलित ज्योतिष : एक सांकेतिक विज्ञान

संगीता पुरी

फलित ज्योतिष प्राचीन भारत की एक प्रमुख देन है। भारत ऋषियों, मुनियों, गणितज्ञों और वैज्ञानिकों का देश रहा है। यहाँ अन्य सभी विज्ञानों के अतिरिक्त ज्योतिष का एक प्रमुख विज्ञान के रूप में विकास हुआ था। यही कारण था कि प्राचीन भारत के राजा-महाराजाओं के पास एक ज्योतिषी अवश्य रखे जाते थे। वे सभी बच्चों की जन्मकुंडली तथा अनेक राजकार्यों के लिए मुहूर्त का निर्धारण करते थे। भारतवर्ष में आज भी जन्मकुंडली बनाने, मुहूर्त निकालने और वर-वधु की कुंडली मिलाने में ज्योतिषियों की जहरत पड़ती है।

फिर भी, आज ज्योतिष जैसे विषय पर से आम जनता का विश्वास उठ गया है। इसका कारण ज्योतिष का परंपरागत व्यवसाय के रूप में मिमटकर रह जाना है। इसके अलावा ज्योतिष की आड़ में अनेक ठगों और तांत्रिकों को बढ़ावा मिलता है। वे लंबे-लंबे खर्चवाले अनुष्ठानों

और पूजा-पाठ के द्वारा विगड़े हुए ग्रह की शांति कराना चाहते हैं। परेशान मनुष्य या तो उनकी चाल में फँस जाते हैं और मानसिक शांति खो बैठते हैं या ज्योतिष पर से उनका विश्वास उठ जाता है। ज्योतिष का परंपरागत ढंग से अध्ययन भी इसकी विवादास्पदता के लिए जिम्मेवार है। आज भी अनेक ज्योतिषी किसी जन्मकुंडली का अध्ययन दो-सौ वर्ष पुराने ढंग से करते हैं।

मनुष्य का जीवन दुःख और सुख से मिलकर बना है। प्राचीन काल की सभी कहानियों तथा आधुनिक जीवन के अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य का जीवन दुःख और सुख—दोनों अनुभव करने के लिए है। इसमें ग्रहों का विशेष प्रभाव है। ग्रह के अनुसार मनुष्य के सामने एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य की मेहनत का कोई मूल्य नहीं है। ग्रह वास्तव में मनुष्य के

प्रभाव, बनावट और परिस्थिति को नियंत्रित करता है, किंतु वह व्यक्ति की मेहनत, बदलते युग, बढ़ते स्तर और माहौल को नियंत्रित नहीं कर सकता; उसमें कमी या बढ़ोत्तरी कर सकता है।

विश्व में पैदा होने वाले ८० बच्चों का लग्न, राशि तथा पूरी जन्मकुंडली विलकुल एक होती है। लेकिन इनमें से सभी बच्चे एक सी ऊँचाई हासिल नहीं कर पाते। ऊँचाई हासिल करने के लिए मेहनत, परिस्थिति और प्रोत्साहन का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक साथ पैदा होनेवाले सभी बच्चों में से कोई मजदूर, तो कोई कलर्क, कोई ऑफिसर, कोई व्यवसायी और कोई मंत्री के घर जन्म लेता है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण में आर्थिक और शैक्षणिक वातावरण ग्रह से अधिक महत्वपूर्ण होता है।

बदलते युग के साथ-साथ ग्रह के प्रभाव में भी परिवर्तन होता है। यदि किसी की जन्मकुंडली में मजबूत संतान पक्ष की संभावना है तो वह मानृप्रधान युग में व्यक्ति के लिए तथा आज के युग में वेश्या के लिए लड़कों की अधिकता का संकेतक है, जबकि पितृप्रधान देश में वही योग व्यक्ति को लड़के की अधिकता देगा। यदि किसी जन्मकुंडली में असाध्य रोग से ग्रसित होने का संकेत है तो वह किसी युग में व्यक्ति को टी० वी०

का परीज बनाता था, उसके बाद कैसर का और अभी वही योग एडम का परीज बना देता है।

वातावरण में परिवर्तन भी ग्रह के प्रभाव में परिवर्तन लाता है। किसी किसान या व्यवसायी की जन्मपत्री में उत्तम संतान का योग परिमाणात्मक वृद्धि कर सकता है, ताकि वडे होकर वे परिवार की आमदनी बढ़ाएं, किंतु एक ऑफिसर के लिए उत्तम संतान का योग संतान के गुणात्मक पहल में वृद्धि करेगा। किसी जन्मपत्री में कमज़ोर संतान का योग एक साधारण किसान के लिए आलसी, बड़े व्यवसायी के लिए अच्छा और एक ऑफिसर के लिए शिक्षित वेरोजगार बच्चे का कारण बनेगा। किसी किसान के पुत्र की कुंडली में उत्तम विद्या का योग होने से वह ग्रेजुएट होगा, किंतु किसी ऑफिसर के पुत्र का वही उत्तम योग उसे आड० ए० ए० ऑफिसर बना सकता है। किसी किसान के लिए उत्तम मकान का योग उसे पक्के का दोमंजिला मकान ही दे सकता है, किंतु एक बड़े व्यवसायी का वही योग उसे एक शानदार बंगला देगा।

अलग-अलग देश में ग्रहों के प्रभाव में परिवर्तन होता है। किसी विकसित देश में किसी महिला का अच्छा योग उसे आत्मनिर्भर बनाएगा, जबकि भारत जैसे देश में वही योग उसे अच्छा धर-वर प्रदान कर सकता

है। किसी लड़की भी जन्मपत्री में हृत्का कमजोर पति पक्ष भारत में सिर्फ पति से संबंधित परेशानी देगा, जबकि अमेरिका जैसे देश में वह योग तलाक का कारण बनेगा।

इन सबके बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रह का कोई प्रभाव मनुष्य पर नहीं है। ग्रह मानव के मन और मस्तिष्क तक का नियंत्रक है। व्यक्ति अपनी जन्मकुंडली के अनुसार ही किसी प्रकार की परिस्थिति प्राप्त करता है। इससे स्पष्ट है कि वह ऐसी नौकरी या ऐसा व्यवसाय प्राप्त करता है, जिसे उसे मिलना चाहिए। कोई लड़की वैसा ही घर-वर प्राप्त करती है, जैसा उसे मिलना चाहिए। वैसा व्यवसाय, नौकरी या घर-वर चुनने के लिए उसके माता-पिता, परिवार या उसे नियंत्रण करने वाला ग्रह ही है।

इसके अतिरिक्त ग्रह भीमप में संबंधित वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। वादल, वर्षा, बाढ़, तूफान और भूकंप का आना भी ग्रह के अनुसार ही होता है। किसी दो ग्रह के विशेष संबंध से ही भीमपीय परिवर्तन की संभावना बनती है।

ग्रह के प्रभाव को समझने के लिए फलित ज्योतिष का अध्ययन होता है। आज भले ही हम अपने को विज्ञान के युग का समझकर ज्योतिष को नकारते रहें, किन्तु वास्तव में ज्योतिष एक सांकेतिक विज्ञान है और यह मनुष्य के स्वभाव, बनावट और परिस्थितियों का पूरा संकेत देता है। इस विषय में नए-नए शोध की आवश्यकता है और जबतक ज्योतिषी परंपरागत ढंग को छोड़कर नए ढंग से किसी जन्मपत्री की विवेचना नहीं करेंगे, तब तक फलित ज्योतिष उपेक्षित विषय बना रहेगा।

गम

□ अविनाश कुमार सिंह

गम तेरे जाने का नहीं
कुछ को पीछे छोड़ जाने का है
कटे वृक्ष की परिणति जानी हुई है
चिता तो हरित वृक्षों की है।
जो बिन संरक्षण

सूख जाएँगे या फिर
वट-वृक्ष तुल्य संपूर्ण वन में
छा जाएँगे
गम मृत्यु का नहीं /
शेष जीवन का है।

झूठी सौगन्ध

□ रामेश्वर सिनहा 'पौयूप'

अर्थहीन हुए आज सारे सम्बन्ध।
टूटे परिवेश लगे रखने पदबन्ध॥
पशुता की सीमाएँ लाँघ गया आदमी।
चाट रहा लोलुप अपनापन दुर्गन्ध।

जाने-अनजाने कुछ हो जाता ऐसा
जीवन से जुड़ते विषेले अनुबन्ध।
सांस्कृतिक तथ्यों से कटे-कटे लोग
बनकर के मात्र रह गये हैं कवन्ध।
नैतिक अवमूल्यन से जोड़ लिए रिश्ते
घूरे पर फेंक दिये हमने प्रतिबन्ध।
निस्पन्दित जिन्दगी माँग रही रोटी
कब तक हम जीएँ पी झूठी सौगन्ध।

परजीवी

□ सिद्धेश्वर सिंह 'मधुकर'

मौत !
चौराहों पर पलते हुए देखी थी
बन्दगली के बदबूदार कोचड़ में
कुलबुलाते असंख्य कीड़ों की तरह
और कभी-कभार
आँखों की सखी नदी की रेत में
तड़पती मछलियों की मानिंद भी—
...अनवरत

मगर आज
कई एक भयानक मौतें
मेरी नसों के रक्त में घुलकर
मुक्षमें ही जी रही हैं—
जिन्दगी का पर्याय बनकर

युवा प्रतिभा

जनगायक भरत शर्मा व्यास

गीत-संगीत की दुनिया में जब भी भोजपुरी शैली का जिक्र होता है तो प्राणों में पुरबी, कजरी, विदेशिया और बिरहा का स्वर स्वतः घुलने लगता है। जनगायक भिखारी ठाकुर और महेन्द्र मिश्र को आज भी भोजपुरी गीतों के रसिया पहले की ही तरह याद करते हैं।

आज भोजपुरी लोकगीत आँडियो से भी जुड़ गया है और श्रीमती शारदा सिन्हा, भरत शर्मा व्यास, भरत सिंह भारती, मुन्ना सिंह, अजीत कुमार अकेला, नथुनी सिंह, गौतम तूफान, प्रेमसागर, आदि कई लोकगायक भोजपुरी गीत-संगीत के आकर्षण बने हुए हैं। मगर, वर्तमान में लोकप्रियता के शिखर पर कोई एक नाम देखा जा सकता है तो वह है भरत शर्मा व्यास का।

भोजपुरी लोकगीत गायन के क्षेत्र में आवाज की मधुरता और स्वरों की संवेदनात्मक पकड़ के कारण जाने जानेवाले भरत शर्मा व्यास आज हर जुबान पर हैं। आज जहाँ भी भोजपुरी लोकगीतों के आँडियो कैसेट वज रहे हों, वहाँ भरत शर्मा के बाद भोजपुरी गीत-संगीत का

की उपस्थिति अनिवार्यतः देखी जा सकती है।

सन् १९८९ में आर. सीरीज (मऊ) ने श्री शर्मा के तीन कैसेट रिलीज किये, जिसके बाद उनके कैसेटों का एक अविराम सिल-सिला चल पड़ा। दिल्ली की टी सीरीज, रामा, मैक्स, मैक, लारा, सुपर ७ सीरीज आदि कम्पनियों में लगभग पचास से अधिक कैसेटों की रिकार्डिंग हुई और आज बाजार में सबसे अधिक उन्हीं के स्वर की माँग है।

वैसे तो, भरत शर्मा के पूर्व भी कई भोजपुरी लोकगीतगायक हो चुके हैं, जिनके कैसेटों ने भी बाजार में कम धूम नहीं मचायी, मगर श्री शर्मा ने इस क्षेत्र में कई कीर्तिमान स्थापित किये। पहले, आँडियो कैसेट की दुनिया में अधिकांशतः भोजपुरी गायन गायकों के फूहड़ स्तर के कारण अपनी हास्यास्पद स्थिति में था। अश्लील कैसेटों की बाजार में आज भी एक अच्छी संख्या है, मगर इस क्षेत्र में भरत शर्मा के पदार्पण करने के बाद भोजपुरी गीत-संगीत का

स्तर निश्चय ही ऊँचा हुआ है। पहले गायकों और आडियो कैसेट की कंपनियों के मन में एक डर समाया हुआ होता था कि बिना अश्लील गीतों के गाये कैसेट बिकेंगे ही नहीं। मगर, आज भरत शर्मा की आवाज में सैकड़ों साहित्यिक गीत और गजलों के रिकार्ड बाजार में हैं और अत्यधिक लोकप्रिय भी हैं। इस प्रकार श्री शर्मा के गायन से तथा कथित पूर्व लोकगायकों और कैसेट कंपनियों का मोहब्बंग हो चुका है तथा लोकगीत के श्रोताओं को स्तरीय खुराक मिलने के कारण उनका भी पानसिक स्तर बढ़ा है।

आज भोजपुरी लोकगीतगायन में यदि गायिकाओं में शीर्ष पर शारदा सिन्हा हैं तो गायकों में श्री व्यास।

यूँ तो श्री शर्मा ने पारंपरिक लोकगीतों का पूरा लिहाज किया है और पिया, सैंया, बालम, गोरी आदि के संवोधनों और प्रतीकों, जो लोक साहित्य और सन्त साहित्य में पूरी प्रतिष्ठा के साथ तथा बड़ी संख्या में विद्यमान हैं—से भरे गीतों को ज्यादा महत्त्व दिया है तथा संयोग और विप्रलम्भ के ही गीत अधिक संख्या में गाये हैं, मगर आम जन के दुःख-दर्द से जुड़ी रचनाओं को भी उसी तल्लीनता से गाया है।

जहाँ, “रोओ दुटिहें गरीब के त परवे करी। कहीं विजली गिरी कहीं जरवे करी।” जैसे गीत के

माध्यम से कहवे जन-संदेश अधिक से अधिक जन तक अपनी आवाज के माध्यम से पहुँचाना वे अपना कर्तव्य समझते हैं, वहीं “बुझाता कि आपन भवन राख होई वतन राख होई।” जैसी गजल के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की दिनोंदिन मूल्यहीन होती जा रही स्थिति से दुःखी होकर जनता की डायरी में विनाश की संभावना भी दर्ज कराते हैं। इस तरह के गीत किसी भी गायक और कैसेट कंपनी के प्रचार-प्रसार, में आज के माहौल में “रिस्की” माने जाते हैं। मगर, किसी जनगायक को इसकी चिंता कैसी? सच्चाई तो यह है कि इस तरह के गीतों को जनता ने बड़े प्यार से स्वीकार किया है और उनकी जुवान पर ये अपनी जगह बना चुके हैं।

अपनी एक बातचीत में श्री शर्मा यह स्वीकार करते हैं कि उनके गायन की शुरुआत सामूहिक तौर पर रामायण शैली के गायन से हुई और इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुभव और प्रतिष्ठा अर्जित करने के बाद वे एकल मंच कार्यक्रम देने लगे। अपने गायन के लिए लोकगीत का ही क्षेत्र चुनने का कारण स्पष्ट करते हुए वे बताते हैं कि “मैं तो गाँव का रहने वाला हूँ। वहाँ शास्त्रीयता के प्रति श्रद्धा तो है, मगर माहौल नहीं। सच पूछिए तो मेरे मन में गाँव की सुगंध

जैसे रचना गयी है। मुझे लगता है जैसे लोकगीतों में ही मेरे प्राण बोलते हैं।"

श्री शर्मा के लोकगीतों की तरह उनके द्वारा गाये जानेवाले भजन और गजलों को भी श्रोताओं ने उसी प्यार से स्वीकार किया है। भविष्य में इस गायक से मधुर गीतों के करोड़ों श्रोताओं की उम्मीदें बँधी हुई हैं।

लोकगीत के क्षेत्र में विहार की धरती पर श्रीमती शारदा सिन्हा के बाद सर्वाधिक लोकप्रियता श्री शर्मा को ही मिली है। सरकार से हमें उम्मीद है कि वह श्री शर्मा की इस भूमिका का अवश्य मूल्यांकन करेगी तथा भोजपुरी लोकगीत के नवयुग के इस पुरोधा कलाकार को शीघ्र पदमश्री सम्मान से विभूषित करेगी।

□ डॉ० विमल

चिकित्सा-परामर्श

ड्रग डिजीज से बचें

□ डॉ० बी. प्रसाद

अधिक मात्रा में अनुपयोगी औषधि के प्रयोग से अनेक रोगों का जन्म होता है। इन्हें ही ड्रग डिजीज कहते हैं। एक आम गलत धारणा है कि होमियोपैथी दवा नुकसान नहीं करती है। लेकिन यह सोचने की वात है कि जो दवा नुकसान नहीं कर सकती तो, वह फायदा कैसे करेगी? यदि फायदा करती है तो नुकसान भी जरूर करती है लेकिन गलत और अधिक मात्रा के उपयोग से। इसलिए अत्यधिक मात्रा में दवा का सेवन विना किसी चिकित्सक के परामर्श के अहितकर होगा।

होमियोपैथ की एक त्रासदी है कि वाजार पुस्तकों को पढ़कर कुछ नीम-हकीम लोग फार्मेसी (भैंपज विज्ञान) की जानकारी के बगैर इलाज करना शुरू कर देते हैं। इन्हीं लोगों के चंगुल में फैसकर अनभिज्ञ

जनता 'ड्रग डिजीज' खरीद रही है, जो जीवनी शक्ति को बुरी तरह प्रभावित करती है। ड्रग डिजीज मनुष्य को रोगी एवं सदा के लिए लाचार कर देती है। अतः जल्द आराम पाने के लिए गलत दवा कभी न खायें।

इस औद्योगिक क्षेत्र में आमतौर पर श्वास, कष्ट, खांसी, सर्दी, एलर्जी, पेट की गड़बड़ी, अतिसार आदि रोग के ही अधिक रोगी मिलते हैं। इनके दो मुख्य कारण हैं—प्रदूषित वायु और जल। इनसे बचने के लिए पानी को उबाल कर ही पीना पहली आवश्यक शर्त है। और वायु-प्रदूषण दूर करने हेतु अपने आस-पास पेड़ लगाने और सफाई रखने की सलाह तो सरकार विभिन्न माध्यमों से रोज ही दे रही है, उन पर अमल किया जाय। □

पानी

□ रामबली सिंह

'पानी' कई रूपों में मेरे सामने है
इसके बरसते ही धरती का जी जुड़ा जाता है
और किसान की छाती दूनी हो जाती है,
मगर नदियों में जब अपनी सीमा पार कर जाता है
तो लोग बेघर भी हो जाते हैं
इसी पानी का आनन्द तब और बढ़ जाता है
जब युगल प्रेमी छतदार मकान में बैठ
झरोखों से फुहार की बहार का सुख लेते हैं
मगर हाय री विरही नायिका !
काले-काले बादलों को देख
उसका तो चैन ही जैसे जाता रहा होगा ।
पानी को क्या कहूँ—बुरा या भला ?
कभी तो मुँह में आ जाता है
कभी आँखों में समा जाता है
और कभी आँखों से वह भी जाता है ।

दहेजवाहिनी

□ गुलाब अंसारी

जल रही थी धू-धू कर वह
लहरा था आँचल उसका
अग्नि की लपटों के बीच
आप उसे शायद पहचानते नहीं
पर मुझे यकीन है
कि आप जरूर जानते हैं उसे
अग्नि के समक्ष सात फेरे
इतनी जल्दी कैसे भूले जा सकते हैं ?
कैसा कुटिल सूत्र है यह—
जब भी कोई वहू
दहेजवाहिनी होती है
तो उसे यूँ ही भुलाया जाता है ।

प्राचीन भारत के महान् वैज्ञानिक

अश्वनी कुमार—विश्व के प्रथम वैज्ञानिक। ऋग्वेद में उनके बनाये उड़नेवाले रथों तथा उड़नेवाली नौकाओं का उल्लेख है। विश्वला के कटे पाँव के स्थान पर धातु का पैर बनवाकर लगवाया।

भरद्वाज—विमान शास्त्र, यंत्रार्णव, भारद्वाज संहिता के प्रणेता। अनेक प्रकार के विमान बनाने की विधि का अनुसंधान किया।

कणाद—अणु-सिद्धान्त के प्रतिपादक।

अग्निवेश—ई० सन् पूर्व १३००, चरक-संहिताकार।

धन्वन्तरि—शल्य-शास्त्र के आदि प्रवर्तक।

सुश्रुत—ई० पूर्व १० वीं शती, संधान शल्य कर्म (Plastic Surgery) के आविष्कारक।

चरक—ई० पू० ५ वीं शती, चरक संहिता का प्रतिसंस्कार।

शालिहोत्र—पशु-चिकित्सा के आचार्य, हय-आयुर्वेद के रचयिता।

बौद्धायन—ई० पू० ८००, ज्योतिषशास्त्री।

वराहमिहिर—४२५ ई०, खगोल शास्त्र एवं पंचसिद्धान्तिका ग्रंथ के रचयिता।

नागार्जुन—७ वी-८ वीं शताब्दी। महान् रसायनशास्त्री, रसरत्नाकर एवं लौह शास्त्र आदि के रचयिता।

आर्यभट्ट—४७६ ई०, पृथ्वी का आकार तथा गति, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण की व्याख्या, वीज गणित, त्रिकोणमिति, ज्योतिष विज्ञान आदि के आविष्कारक। महासिद्धान्त के रचनाकार।

ब्रह्मगुप्त—५९८ ई० गुरुत्वाकर्षण-सिद्धान्त के आविष्कारक, दशमलव प्रणाली के प्रणेता। ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त एवं खांड, खाद्य ग्रन्थों के रचयिता।

भास्कराचार्य—१११४ ई०, पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के व्याख्याता, कलनगणित का वीजारोपक, 'लीलावती' आदि ग्रन्थों के रचयिता।

गृह्यसमद—अंकों पर शून्य लगाकर लिखने की प्रक्रिया के आविष्कारक।

प्रस्तुति □ दशरथ प्रसाद ठाकुर

मेसर्स अनामिका ट्रेडिंग एजेंसी

[इंजीनियर, कांट्रैक्टर एंड जेनरल आर्डर सप्लायर]

बोकारो थर्मल

शुभ कामनाओं के साथ,

आपका

स्वागत

है।

□ रीना राय मेडिकल हॉल

□ वावा मेडिकल हॉल

न्यू मार्केट, बोकारो थर्मल

□ कुमार मेडिकल हॉल

डीवीसी हास्पिटल के मामने,
बोकारो थर्मल

शुभकामनाओं के साथ

राज स्वीट्स

न्यू मार्केट, बोकारो थर्मल

पिन—द२९१०७

मैं स्वयं को हिन्दू कहने में गर्व
अनुभव करता हूँ।

—स्वामी विवेकानंद

हार्दिक शुभकामनाओं महित

वी. एन. जेनरल स्टोर

न्यू मार्केट, बोकारो थर्मल

अजीत कुमार सिंह

मिलिल कांट्रैक्टर एंड जेनरल आर्डर
सप्लायर

मुख्य कार्यालय :

उत्तरी पटेल नगर

शास्त्री नगर, पटना।

कैम्प : पो०—बोकारो थर्मल

जि०—गिरिहीह (बिहार)

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ—

जे. के. मेडिकल हॉल

डीवीसी मार्केट,
बोकारो थर्मल

★ माँ मथुरासिनी महादेव्यै नमः ★

स्वतंत्रता तभी तक फूल-फूल मिलती है
जब तक कि वह गाढ़ीय संस्कृति को पोषण देने के लिए
आहार जुटाती रही है ।

—दीनदयाल

श्री इंटरप्राइज़ोज़

प्रिट्स,

स्टेशनरी एण्ड जेनरल आर्डर सप्लायर्स
राजा बाजार, बोकारो थर्मल

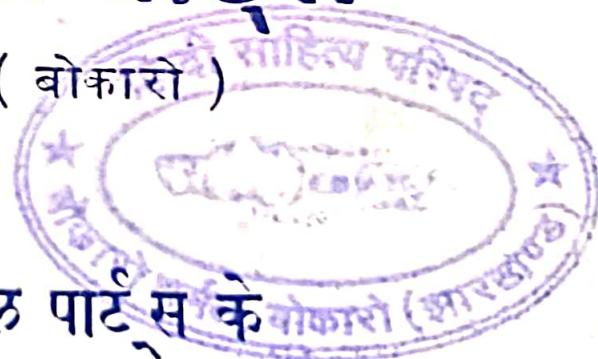


पियरलेस के माध्यम से बचत करें ।
एजेंट—सुनील कु० गुप्ता

हिन्दी दिवस के शुभ अवसर पर
शुभकामनाओं के साथ—

एस० कै० ऑटो पार्ट्स

हनुमान मार्केट, कथारा (बोकारो)



स्कूटर एवं मोटरसाइकिल पार्ट्स के
एकमात्र विश्वसनीय विक्रेता

परीक्षा प्रार्थनीय

मुद्रक : आर्यमूर्य प्रेस, क० १६/४४ वीवीहटिया, भैरोनाथ, वाराणसी ।